वर्मा
एस. चंद एंड को
दिल्ली-लाहौर।

प्रथम बार १९२६
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक—
अमरचंद
राजहंस प्रेस दिल्ली।

पात्र-परिचय

पुरुष

सूत्रधार	प्रधान नट
चाणक्य	राजनीति का प्रसिद्ध प्रकाड पडित, जो विष्णुगुप्त तथा कौटिल्य नाम से भी पुकारा जाता था ।
चद्रगुप्त	पाटलिपुत्र का राजा, नाटक का नायक ।
राक्षस	नद का प्रधान-मत्री ।
मलयकेतु	पर्वतक का पुत्र, प्रतिनायक ।
शार्ङ्गरव	चाणक्य का शिष्य ।
भागुरायण	चाणक्य का गुप्तचर राक्षस का कृत्रिम मित्र ।
चदनदास, शकटदास	राक्षस का अतरग मित्र ।
विराधगुप्त	सँपेरे के वेश में राक्षस का गुप्तचर ।
करभक	पथिक के वेश में राक्षस का गुप्तचर ।
कंचुकी	वैहीनरि नामक चद्रगुप्त का द्वारपाल ।
कंचुकी	जाजलि नामक मलयकेतु का द्वारपाल ।
जीवसिद्धि	बौद्ध-संन्यासी के वेश में चाणक्य का ज्योतिर्विद् गुप्तचर ।

प्रियंवदक — राक्षस का सेवक ।

सिद्धार्थक — प्रथम चाण्डाल वेषधारी वज्रलोमक नाम का चाणक्य का चर ।

पुरुष — राजा के आगमन की सूचना देनेवाला ।

भासुरक — मलयकेतु का सेवक ।

समिद्धार्थक — सिद्धार्थक का मित्र वेणुवेत्रक नाम का द्वितीय चाण्डाल वेषधारी चाणक्य का गुप्तचर ।

स्त्रियाँ

प्रतिहारी — शोणोत्तरा नाम की चन्द्रगुप्त की द्वारपालिका ।

प्रतिहारी — विजया नाम की मलयकेतु की द्वारपालिका ।

नटी — सूत्रधार की स्त्री ।

स्त्री — चन्दनदास की पत्नी ।

अन्य

पुरुष द्वारपाल चन्दनदास का पुत्र वैतालिक (पहला दूसरा) आदि ।

मुद्राराक्षस नाटक

(रंगशाला में मंगलाचरण होता है)

धन्या कौन तुम्हारे सिर पर ? इंदु-कला, क्या नाम यही ?
परिचित भी क्यों भूल गई तुम ? है यह इसका नाम यही ।
कहती ललना को न शशी को, कह दे विजया, नहिं विश्वास ?
सुरसरि के यों गोपन-इच्छुक शिव का शाठ्य हरे सब त्रास ॥१॥

पद-स्वच्छंद पात से भावी अवनी-अवनति को हरते,
सकल-लोक-व्यापी भुज-युग को झट सिकोड़ अभिनय करते,
अनल उगलती उग्र न डालें दृष्टि, जले संसार कहीं,
यों जग रक्षक शिव का दुख-युत नृत्य हरे दुख-ताप यही ॥२॥

(नांदी के अंत में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—बस, बहुत न बढ़ाइए । मुझे परिषद् ने आज्ञा दी है कि—'आज सामंत वटेश्वर के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र कवि

विशाखदत्त के बनाये हुए मुद्राराक्षस नाटक का अभिनय कीजिए। ठीक है जो सभा काव्य के गुण-दोषों से भली भांति परिचित है उसके आगे अभिनय करते हुए मेरे भी मन में महान् संतोष उत्पन्न होता है।

क्योंकि—

बढ़ती खेती मूर्ख की बोई यदि गुणवान।
धान्य-वृद्धि में है नहीं कारण कर्षक-ज्ञान ।।२।।

तो अब मैं घर जा अपनी सहचरी को बुलाकर गृह-जन के साथ गाना-बजाना आरम्भ करता हूँ। (घूमकर और देखकर) यह हमारा घर है तो भीतर चलूं (अभिनयपूर्वक भीतर जाकर और देखकर) अहा! तो यह क्या बात है, आज हमारे घर में महोत्सव-सा दीख पड़ता है! घर वाले सब अपने-अपने काम में खूब व्यस्त हो रहे हैं। देखो—

जल ढो रही यह पीसती यह गंधमालिक है अहा!
है गूंथती यह मालिकाएँ विविध कुसुमों की यहाँ!
ऊपर उठा करके गिराती यह मुसल को अब यहाँ!
हुंकार बारंबार करती अति मनोहर स्वर हो ।।३।।

तो हो सहचरी को बुलाकर पूछता हूँ।

(नेपथ्य की ओर दृष्टि डालकर)

गुणशालिनी! हे सत्य-विनये! लोक-यात्रा-साधिके!
धर्मादि तीनों वर्ग की संपादिके! भावाधिके!
मेरे भवन की नीति-विद्या-रूपिणी तुम हो कहाँ?
मैं हूं बुलाता कार्य से, आर्ये! झटिति आओ यहाँ ।। ४ ।।

(नटी का प्रवेश)

नटी—आर्यपुत्र! यह रही मैं, आज्ञा देकर आर्य मुझे अनुगृहीत करें।

सूत्रधार—आर्ये! आज्ञा देने की बात तो रहने दो, कहो, आज किसलिए आपने पूजनीय ब्राह्मणों को निमंत्रण देकर कुटुंब के लोगों पर कृपा की है? अथवा घर पर कोई वांछित अतिथि आए हैं, जिससे कि ये विशिष्ट पकवान बन रहे हैं?

नटी—आर्य! आज मैंने पूजनीय ब्राह्मणों का निमंत्रण किया है।

सूत्रधार—कहो किस निमित्त से?

नटी—सुना है, चंद्र-ग्रहण होने वाला है।

सूत्रधार—यह किसने कहा?

नटी—ऐसा नागरिक लोग कह रहे हैं।

सूत्रधार—आर्ये! मैंने ज्योतिःशास्त्र के चौसठों अंगों का भली-भाँति अध्ययन किया है, तो पूजनीय ब्राह्मणों के लिए भोजन बनाना आरंभ करो, चंद्र-ग्रहण के विषय में तो किसी ने तुम्हें धोखा दिया है, देखो—

लघु-मंडल अब चंद्र का, निर्दय राहु स-केतु, —
अभिभव बल से चाहता,

(इस प्रकार आधी बात कह चुकने पर
नेपथ्य में)

आः! यह कौन मेरे रहते हुए बल से चंद्र का अभिभव करना चाहता है?

सूत्रधार— रक्षा में शुभ हेतु ॥१॥

नटी—आर्य ! यह फिर कौन है, जो पृथ्वी पर रहकर चन्द्र को ग्रह के आक्रमण से बचाना चाहता है ?

सूत्रधार—आर्ये ! यह ठीक है, मैंने भी नहीं पहचाना । अच्छा मैं फिर सावधान होकर स्वर को पहचानूंगा ।

('मधु-मंडल' इत्यादि फिर पढ़ता है)

(नेपथ्य में)

आः ! यह कौन मेरे रहते हुए बल से चन्द्र का परिभव करना चाहता है ?

सूत्रधार—(सुनकर) अच्छा समझ गया ।

कुटिल-बुद्धि कौटिल्य

नटी—(यही नाम सुनकर भय का अभिनय करती है)

सूत्रधार—

कुटिल-बुद्धि कौटिल्य वही यह कोपानल में
जिसने बरबस नंद-वंश भस्म किया क्षण में ।
सुन 'चंद्रग्रहण' यह भ्रम यही इसने माना,
मौर्य-चंद्र पर शत्रु करेगा हमला जाना ॥२॥

तो आओ हम चलें ।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रस्तावना

पहला अंक

स्थान—चाणक्य की कुटी

(खुली शिखा को हाथ से फटकारते हुए चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य —कहो, यह कौन मेरे रहते हुए चद्रगुप्त का वल से अभिभव करना चाहता है ?

चव कर मतगज-रक्त को जो लाल रँग में है रँगी,
सध्या-अरुण मानो शशी की ही कला हो जगमगी !
जृभा-समय मुख खोलने से जो चमकती है महा,
है कौन, ऐसी सिह दष्ट्रा चाहता रहना यहाँ ॥८॥

और—

नंद-वंश-हित काल-सर्पिणी,
क्रोध-वह्नि-चल-धूम्र-वल्लरी,
बध्य कौन जग-मध्य आज भी,
चाहता न मम आ शिखा बँधी ? ॥९॥

और सुनो—

नव-यश-वन वह्नि जो अहो !
क्रोध को मम प्रदीप्त लांघ के,

कौन मूर्ख परिणाम-अंध हो

नाग-दन्तक फल-रीति से ॥१॥

शार्ङ्गरव ! शार्ङ्गरव !

(शिष्य का प्रवेश)

शिष्य —गुरुजी ! आज्ञा कीजिए ।

चाणक्य—वत्स ! मैं बैठना चाहता हूँ ।

शिष्य —गुरुजी ! इस दालान में बेंतासन बिछा हुआ है तो गुरुजी यहाँ विराज सकते हैं ।

चाणक्य—वत्स ! कार्य-व्यग्रता ही मुझे व्याकुल कर रही है न कि शिष्यों के प्रति गुरु-जन की स्वाभाविक कटुता । (अभिनय पूर्वक बैठकर, स्वगत) नागरिक लोगों को इस बात का कैसे पता लगा कि—नन्द-कुल के विनाश से क्रुद्ध होकर राक्षस पिता के वध से भय-व्याकुल हुए और सारे नन्द-राज्य की प्राप्ति की आशा से प्रोत्साहित हुए पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के साथ मिलकर और उसके आश्रित महान यवनराज की सहायता लेकर, चन्द्रगुप्त पर चढ़ा चाहता है । (सोचकर) अथवा जब मैंने सारे संसार के देखते-देखते नन्द-कुल के नाश की प्रतिज्ञा करके दुस्तर प्रतिज्ञा-सरिता को पार कर लिया तो अब मैं इस बात के प्रकट हो जाने पर भी क्या इसे न दबा सकूँगा ? यह कैसे ? फिर मेरी—

रिपु-नृपति दिशा-मुख-नारी को शोक-धूम से रखकर श्याम
मन्त्रि-द्रुमों पर नीति-पवन से बिखरा मोह-भस्म अविराम
जला दुखित-पुरवासी द्विज-गण विरहित नंद-वंश-संतान
बुझता दाह्य-विहीन न श्रम से क्रोध-वह्नि वन-वह्नि-समान ॥११॥

और—

धिक्-शब्द-युत दुखित हुए कर निम्न मुख नृप-भीति से,
लखते मुझे जो अग्र-आसन से पतित हत रीति से,
कुल-सहित सिंहासन-पतित ये नंद को देखें तथा,
गिरि-शृंग से झट खींच करि को हरि गिराता है यथा ॥ १२ ॥

वही मैं अब, प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने पर भी, चंद्रगुप्त के कारण नीति का प्रयोग कर रहा हूँ। देखो, मैंने—

हृदय-वासना-सम अवनी से नंद वंश का नाश किया,
सर में नलिनी-सदृश मौर्य को स्थिर-लक्ष्मी-आवास किया,
क्रोध, प्रेम के फल जो दोनों निग्रह और अनुग्रह-रूप,
बाँटा उनको अरि-मित्रों में हठ-युत हो निज-निज अनुरूप ॥१३॥

अथवा, विना राक्षस को वश में किए मैंने नंद-वंश का क्या विनाश कर दिया अथवा चंद्रगुप्त की राजलक्ष्मी को क्या अटल बना दिया? (सोचकर) अहा! राक्षस नंद-कुल का अत्यंत दृढ भक्त है! वह निश्चय ही नंद-वंशीय किसी भी व्यक्ति के जीते जी, चंद्रगुप्त का मंत्री नहीं बनाया जा सकता। यदि वह उसे राज्य दिलाने के लिए यत्न न करे, तो वह चंद्रगुप्त का मंत्री बनाया जा सकता है। ठीक यही सोचकर हमने बेचारे नंद वंशीय सर्वार्थसिद्धि को, तपोवन चले जानेपर भी, मार डाला। फिर भी राक्षस मलयकेतु को अपने साथ मिलाकर हमारे विनाश के लिए घोरतर प्रयत्न करता ही रहता है। (आकाश की ओर इस प्रकार टकटकी बाँधकर मानों राक्षस दीख पड रहा हो) वाह! अमात्य राक्षस! मंत्रियो

में बृहस्पति के समान ! वाह ! तुम धन्य हो । क्योंकि—

> धनी ईश की सेवा करता धन-हित यह संसार,
> आपद में जो साथ न तजते इच्छुक पद-विस्तार;
> प्रभु के मरने पर भी कर जो याद प्रथम उपकार,
> स्वार्थ-हीन सब भार उठाते, वे दुर्लभ संसार ॥ १४ ॥

इसीलिए तो हम तुम्हें अपनी ओर मिलाने के लिए इतना प्रयत्न कर रहे हैं कि जिस प्रकार कृपा करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री-पद को स्वीकार कर सकोगे । क्योंकि—

> नीच मूर्ख यदि सेवक होवें भक्त वहाँ गुण लाभ नहीं
> चतुर पराक्रमशाली भी क्यों भक्ति-हीन से लाभ नहीं ?
> बुद्धि-पराक्रम-भक्ति-सहित जो सुख-दुख में करते कल्याण
> वे ही सच्चे सेवक नृप के अन्य सभी हैं नारि समान ॥ १५ ॥

इसलिए मैं भी इस विषय में सो नहीं रहा हूँ । मैं यथाशक्ति इसको वश में करने का प्रयत्न कर रहा हूँ । कैसे ? देखो, मैंने—'चन्द्रगुप्त और पर्वतक इन दोनों में कोई भी मर जाय उससे चाणक्य का बुरा होगा' यह सोचकर राक्षस ने विष-कन्या के द्वारा हमारा अत्यन्त उपकारी मित्र बेचारा पर्वतेश्वर मरवा डाला है—यह लोकापवाद संसार में सर्वत्र प्रचलित कर दिया है । संसार को विश्वास दिलाने के लिए यही बात प्रकट करने के लिए भागुरायण ने 'तुम्हारे पिता को चाणक्य ने मार डाला' इस प्रकार पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को एकान्त में भयभीत करके उसे यहाँ से भगा दिया है । राक्षस की बुद्धि का सहारा लेकर भी यदि

मलयकेतु युद्ध के लिए तत्पर होता है, तो उसका अवश्य ही निज नीति-चातुरी-द्वारा निग्रह किया जा सकता है। किंतु उसके मार देने से पर्वतक के वध के कारण अपने माथे पर लगे कलंक के टीके को हम नहीं धो सकते। एक और भी बात है, मैंने स्व-पक्ष और पर-पक्ष दोनों पक्ष के प्रेमियों और द्वेषी जनों को जानने की इच्छा से विविध देशों की भाषा, वेश तथा आचार-व्यवहार में निपुण भिन्न भिन्न रूप धारी अनेक गुप्तचरों को नियुक्त कर दिया है, और वे कुसुमपुर-निवासी नंद के मंत्री और मित्रों की गति-विधि एवं उनके कार्य-व्यापारों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखने भालते रहते हैं। मैंने, चंद्रगुप्त के अभ्युदय के संगी भद्रभट आदि विशिष्ट व्यक्तियों को, वह वह कारण उत्पन्न करके—जिससे कि मलयकेतु उनसे प्रसन्न हो जाय, उन-उन पदों पर अधिष्ठित कर दिया है। और शत्रु द्वारा नियुक्त विष देने वाले पुरुषों के कार्य को विफल करने के लिए मैंने राजा के समीपवर्ती ऐसे विश्वस्त पुरुष नियुक्त किये हैं, जो सदा सावधान एवं जागरूक रहने वाले हैं तथा जिनकी स्वामि भक्ति की परख हो चुकी है। इसके अतिरिक्त विष्णुशर्मा नाम का एक ब्राह्मण है, जो मेरा सहपाठी और मित्र है। वह शुक्र की दंड नीति और ज्योति शास्त्र के चौसटों अंगों का प्रकांड पंडित है। नंद-वध की प्रतिज्ञा करने के अनंतर ही मैंने उसे बौद्ध संयासी के वेश में कुसुमपुर भेजकर उसकी नंद के मंत्रियों के साथ मित्रता करा दी है। उसके द्वारा हमारे बड़े-बड़े काम सिद्ध होंगे। तो इस प्रकार मेरी ओर से कोई कमी नहीं होगी। चंद्रगुप्त ही स्वयं मेरे ऊपर संपूर्ण राज्य का कार्य भार डालकर उदासीन

पड़ता है। अथवा या राज्य राजकीय कृत्यों-संबंधी असाधारण दुःखों से रहित होता है वही सुख पहुँचाता है। क्योंकि—

सुर श्रम कर जो भोगते, स्वाभाविक बलवान।
पाते हैं भी गज नृपति, प्राय दुःख महान ॥१६॥

(यमपट हाथ में लिए गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—

अन्य सुरों से कार्य क्या यम को करो प्रणाम।
अन्य-भक्त-जन का यही, हरता जीव सकाम ॥१७॥

और

निश्चय यम की भक्ति से पाता नर निज प्राण।
मारे जो यम लोक को देता जीवन-दान ॥१८॥

तो इस घर में जाकर यम-पट दिखाकर गाता हूँ।

शिष्य—(देखकर) भद्र! भीतर न आना।

गुप्तचर—ऐ ब्राह्मण! यह घर किसका है?

शिष्य—हमारे गुरु आर्य चाणक्य का जिनके नामोच्चारण से पुण्य होता है।

गुप्तचर—(हँसकर) यह अपने ही गुरु-भाई का घर है इसलिए मुझे भीतर आने दो। मैं तुम्हारे गुरु को धर्म का उपदेश दूँगा।

शिष्य—(क्रोधपूर्वक) छि मूर्ख! क्या तुम हमारे गुरुजी से भी अधिक धर्म-विद् हो?

गुप्तचर—ऐ ब्राह्मण! क्रोध न करो। यह निश्चित है कि— सब

सब कुछ नहीं जानते, तो कुछ तुम्हारे गुरु जानते हैं, कुछ हम-सरीखे भी जानते हैं।

शिष्य—(क्रोधपूर्वक) मूर्ख। गुरुजी की सर्वज्ञता को छिपाना चाहते हो ?

गुप्तचर—ऐ ब्राह्मण। यदि तुम्हारे गुरु सब कुछ जानते हैं, तो बताएँ तो सही कि— चंद्र किसे प्रिय नहीं है ?

शिष्य—मूर्ख। यह जानने से गुरुजी का कौनसा प्रयोजन सिद्ध होगा ?

गुप्तचर—ऐ ब्राह्मण! तुम्हारे गुरुजी ही जान लेंगे, जो कुछ इसके जानने से होगा। तुम सीधे-सादे हो, केवल इतना ही जानते हो कि— कमल चंद्र को नहीं चाहते। देखो,

सुंदर भी कमलों का होता
शील रूप-प्रतिकूल।
पूर्ण-बिंब भी रम्य चंद्र के
जो न अहो! अनुकूल ॥१८॥

चाणक्य—(सुनकर स्वगत) अहो। 'मैं चंद्रगुप्त के विरोधी पुरुषों को जानता हूँ' यह इसने कहा है।

शिष्य—मूर्ख! क्या यह बे सिर पैर की बात उड़ा रहे हो ?

गुप्तचर—ओ हो। ब्राह्मण। यह सुसंगत होजाय • ••

शिष्य—यदि क्या हो जाय ?

गुप्तचर—यदि मुझे सुनने और जानने वाला मनुष्य मिल जाय।

चाणक्य—(देखकर) भद्र पुरुष! निश्चिंत होकर भीतर चले आओ, तुमसे और जानने वाला तुम्हें मिल जाएगा।

गुप्तचर—मैं अभी भीतर आया। (भीतर जा समीप पहुँचकर) जय हो जय हो आर्य की।

चाणक्य—(देखकर स्वगत कथी)। कार्यों के बहुत अधिक होने के कारण यह पता नहीं चलता कि—निपुणक को क्या जानने के लिए नियुक्त किया था। (प्रकट) भद्र पुरुष! तुम्हारा स्वागत हो! बैठो।

गुप्तचर—जो आर्य की आज्ञा। (भूमि पर बैठ जाता है)

चाणक्य—भद्र पुरुष! जिस काम के लिए तुम गए थे उसके विषय में कहो। क्या प्रजा चंद्रगुप्त को चाहती है?

गुप्तचर—जी हाँ, आर्य ने पहले ही विराग-कारणों को दूर कर दिया है; इसलिए सुगृहीत-नामधेय देव चंद्रगुप्त में सारी प्रजा अनुरक्त है। किंतु फिर भी इस नगर में तीन पुरुष ऐसे हैं, जो अमात्य राक्षस के पूर्व-स्नेही और उसका आदर-सम्मान करते हैं और जो चंद्र-समान कांति देव चंद्रगुप्त की वृद्धि को सहन नहीं करते।

चाणक्य—(क्रोध पूर्वक) अभी! यह कहना चाहिए कि अपने जीवन को नहीं सहन करते। क्या उनका नाम जानते हो?

गुप्तचर—बिना नाम जाने क्यों मैं आर्य को उनकी सूचना देता?

चाणक्य—तो मैं सुनना चाहता हूँ।

गुप्तचर—सुनें आर्य! पहले तो आर्य के रिपु पक्ष का पक्षपाती क्षपणक है।

चाणक्य—(हर्षपूर्वक स्वगत) हमारे रिपु दल का पक्षपाती क्षपणक। (प्रकट) क्या नाम है उसका ?

गुप्तचर—उसका नाम जीवसिद्धि है।

चाणक्य—क्षपणक हमारे रिपु-दल का पक्षपाती है, यह आपने कैसे जाना ?

गुप्तचर—क्योंकि उसने अमात्य राक्षस द्वारा नियुक्त विष-कन्या का देव पर्वतेश्वर पर प्रयोग किया।

चाणक्य—(स्वगत) यह तो हमारा गुप्तचर जीवसिद्धि है। (प्रकट) भद्र पुरुष ! अच्छा, दूसरा कौन है ?

गुप्तचर—आर्य। दूसरा अमात्य राक्षस का प्रिय मित्र शकटदास नाम का कायस्थ है।

चाणक्य—(हँसकर स्वगत) 'कायस्थ' यह तुच्छ वस्तु है। फिर भी तुच्छ भी शत्रु की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। उसके लिये मैंने सिद्धार्थक को उसका मित्र बनाकर रख छोड़ा है। (प्रकट) भद्र पुरुष ! तीसरे को भी सुनना चाहता हूँ।

गुप्तचर—तीसरा भी, अमात्य राक्षस का मानों दूसरा हृदय, कुसुमपुर-निवासी वह जौहरी सेठ चंदनदास है, जिसके घर में अपने कुटुम्ब को धरोहर के रूप में छोड़कर अमात्य राक्षस नगर से चला गया है।

चाणक्य—(स्वगत) अवश्य बड़ा भारी मित्र है। क्योंकि राक्षस ऐसे पुरुषों के पास कभी भी निज परिवार को धरोहर के रूप में

जरा मुख निकालकर और बाहर निकलते हुए उस बच्चे को घुड़ककर, उसे अपनी कोमल बाहुओं से पकड़ लिया। और बालक को पकड़ने की हड़बड़ में अंगुलि के झटके जाने से उसके हाथ से पुरुष की अँगुली के नाप से बनी हुई यह अंगुलि-मुद्रा देहली-द्वार पर गिर पड़ी। उस स्त्री को इस बात का पता ही नहीं लगा, और वह अंगुलि-मुद्रा मेरे पैर के पास आकर प्रणाम नम्रा नव वधू के समान निश्चल हो गई। मैंने भी, क्योंकि अमात्य राक्षस का नाम इस पर खुदा हुआ है, इसलिये आर्य के चरणों में पहुँचा दी है। तो यह मुद्रा इस प्रकार प्राप्त हुई है।

चाणक्य—भद्र पुरुष। मैंने सुन लिया। जाओ, तुम्हें शीघ्र ही इस परिश्रम के अनुरूप फल मिलेगा।

गुप्तचर—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रस्थान)

चाणक्य—शार्ङ्गरव! शार्ङ्गरव।

(शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—गुरुजी! आज्ञा कीजिये।

चाणक्य—वत्स। दवात-कलम और कागज ले आओ।

शिष्य—जो गुरुजी की आज्ञा! (बाहर जाकर और फिर भीतर आकर) गुरुजी। ये रहे दवात-कलम और कागज।

चाणक्य—(हाथ में लेकर, स्वगत) इसमें क्या लिखूँ? अवश्य ही इस लेख-द्वारा राक्षस को जीतना है।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—जय हो जय हो आर्य की।

चाणक्य—(हर्षपूर्वक स्वगत) इस जय-ध्वनि को मैं स्वीकार करता हूँ। (प्रकट) शोणोत्तरा! तुम क्यों आई हो?

प्रतिहारी—आर्य! कमल मुकुल के समान अंजलि से मस्तक को अलंकृत करके देव चन्द्रगुप्त ने आर्य को यह संदेश दिया है कि—"मैं यदि आर्य आज्ञा करें, तो देव पर्वतेश्वर की श्राद्ध-क्रिया किया चाहता हूँ। और मैं उनके पहने हुए भूषण गुणवान ब्राह्मणों को समर्पित कर रहा हूँ।

चाणक्य—(हर्षपूर्वक स्वगत) वाह! चंद्रगुप्त! वाह! मेरे ही मन के साथ मंत्रणा करके तुमने यह संदेश दिया है! (प्रकट) शोणोत्तरा! मेरी ओर से चन्द्रगुप्त से कह देना कि—'वाह बेटा! वाह! तुम लोक-व्यवहार को भली भाँति जानते हो। तो अपने मन की बात कर डालो। परंतु पर्वतेश्वर के पहने हुए बहुमूल्य अलंकार गुणवान ब्राह्मणों को ही समर्पित करने चाहिये। इसलिये ऐसे ब्राह्मणों को मैं स्वयं गुण-परीक्षा के बाद भेजूँगा।

प्रतिहारी—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रस्थान)

चाणक्य—शार्ङ्गरव! शार्ङ्गरव! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से मेरी ओर से कह दो कि—'आप लोग चंद्रगुप्त के पास जाँय और भूषण दान लेकर मुझसे मिलें।'

शिष्य—जो गुरुजी की आज्ञा।

(प्रस्थान)

चाणक्य—(स्वगत) यह बात तो पीछे से लिखने की है, पहले क्या लिखें? (सोचकर) हाँ, जान गया। मुझे गुप्तचरों से पता लगा है कि—उस यवनराज की सेना में प्रधानतम पाँच राजा आगे होकर राक्षस के पीछे चलते हैं।

कौलूत चित्रवर्मा नरपति, नृसिंह सिंहनाद मलयेश,
अरि-यम सिंधुसेन सिंधु पति, पुष्कराक्ष काश्मीर-नरेश,
हय-बल-युत मेघाक्ष नृपति वह पंचम पारसीक-अधिराज,
इनके नाम यहाँ मैं लिखता, मेटे चित्रगुप्त वह आज ॥२०॥

(सोचकर) अथवा नहीं लिखता, सब कुछ गोल-माल ही रहे! (प्रकट) शार्ङ्गरव! शार्ङ्गरव!

(शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—गुरुजी! आज्ञा कीजिये।

चाणक्य—वत्स! श्रोत्रिय लोग कितना भी सुधारकर लिखें, उनके अक्षर अस्फुट ही होते हैं, इसलिए हमारी ओर से सिद्धार्थक से कहो—(कान में कहकर) यह बात किसी को भी किसी के भी प्रति साक्षात् कहनी चाहिये, इसलिये शकटदास के पास जाकर उससे सरनामे पर बिना किसी के नाम वाला पत्र लिखवाकर मेरे समीप आवे, और उससे यह न कहे कि चाणक्य लिखवा रहा है।

शिष्य—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

चाणक्य—(सहर्ष) अहो! मैंने जीत लिया मलयकेतु!

(लेख हाथ में लिये हुए सिद्धार्थक का प्रवेश)

सिद्धार्थक—जय हो जय हो आर्य की। आर्य! यह वह शकटदास का अपने हाथ का लिखा हुआ लेख है।

चाणक्य—(लेकर देखकर) अहो! कैसे सुन्दर अक्षर हैं! (पढ़कर) भद्र पुरुष! इस पर यह मोहर लगा दो।

सिद्धार्थक—जो आर्य की आज्ञा। (मोहर लगाकर) आर्य! इस पत्र पर मोहर लग गई है। आर्य आज्ञा करें और क्या किया जाय।

चाणक्य—भद्र पुरुष! मैं तुम्हें किसी अपने करने योग्य कार्य में नियुक्त किया चाहता हूँ।

सिद्धार्थक—(हर्षपूर्वक) आर्य! अनुगृहीत हूँ। तो आर्य आज्ञा करें—आप का कौन-सा काम इस सेवक को करना होगा?

चाणक्य—भद्र पुरुष! पहले तुम वध-शाला में जाकर घातकों को क्रोध-पूर्वक दाहिनी आँख का दबाने का संकेत समझा देना; उसके बाद जब वे संकेत को समझकर भय के बहाने इधर उधर भाग जायें, तब तुम शकटदास को वध-शाला से हटाकर राक्षस के समीप पहुँचा देना; मित्र की प्राण-रक्षा के कारण प्रसन्न होकर वह तुम्हें पारितोषिक देगा। कुछ समय तक राक्षस की ही सेवा में रहना। तब जबकि शत्रु लोग निकट संपर्क में आ जायें, तब तुम अपना यह प्रयोजन सिद्ध करना।

(कान में कहता है)

सिद्धार्थक—जो आर्य की आज्ञा।

चाणक्य—शार्ङ्ग रव! शार्ङ्ग रव!

(शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—गुरुजी! आज्ञा कीजिए!

चाणक्य—कालपाशिक और दंडपाशिक से मेरी ओर से यह कहो कि—'चंद्रगुप्त की आज्ञा है कि जो वह जीवसिद्धि नाम का जैन-साधु है, उसने, राक्षस की आज्ञा से विष-कन्या का प्रयोग करके, पर्वतेश्वर को मार डाला, उसके इसी अपराध को प्रसिद्ध करके उसे अनादरपूर्वक नगर से निकाल दें।'

शिष्य—जो आज्ञा!

(चलने लगता है)

चाणक्य—वत्स! ठहरो, ठहरो, उससे यह भी कहना कि—'जो वह दूसरा शकटदास नाम का कायस्थ है, वह राक्षस की आज्ञानुसार हमारे शरीर-विनाश के लिए नित्य यत्न करता रहता है, उसको भी यह अपराध प्रसिद्ध करके शूली पर चढ़ा दो और उसके परिवार को कारागार में पहुँचा दो।'

शिष्य—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

चाणक्य—(चिंता का अभिनय करता हुआ स्वगत) क्या दुरात्मा राक्षस भी पकड़ा जा सकता है?

सिद्धार्थक—आर्य ! मैंने ग्रहण कर लिया।

चाणक्य—(हर्षपूर्वक स्वगत) अहा ! राक्षस को पकड़ लिया ! (प्रकट) भद्र पुरुष ! किसे ग्रहण कर लिया ?

सिद्धार्थक—मैंने आर्य का संदेश ग्रहण कर लिया है, तो मैं कार्य सिद्ध करने के लिए जाऊँगा।

चाणक्य—(अंगुलि-मुद्रा के साथ पत्र देकर) भद्र ! सिद्धार्थक ! जाओ, तुम्हारा कार्य सफल हो।

सिद्धार्थक—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रणाम करके प्रस्थान)

(शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—गुरुजी ! कालपाशिक और दण्डपाशिक दोनों ने गुरुजी को यह संदेश भेजा है कि—'महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा का हम अभी पालन कर रहे हैं।

चाणक्य—बड़ा अच्छा है। वत्स ! मैं अब सेठ चन्दनदास जौहरी से मिलना चाहता हूँ।

शिष्य —जो गुरुजी की आज्ञा।

(बाहर जाता है चन्दनदास के साथ पुनः प्रवेश)

शिष्य—इधर को इधर को सेठजी !

चन्दनदास—(स्वगत)

निठुर इस चाणक्य की सुनकर कड़ी पुकार।
दोष रहित भी भय बिकल दोषी करें अपार ॥१०॥

इसीसे मैंने धनसेन आदि तीनों व्यापारियों से कह दिया है कि—'दुष्ट चाणक्य कदाचित् मेरे घर की तलाशी ले ले, इसलिए स्वामी अमात्य राक्षस के परिवार को सावधान होकर अन्य स्थान पर पहुँचा दो, मेरा जो होता है, वह होने दो।'

शिष्य—अजी। सेठजी! इधर को, इधर को।

चंदनदास—यह मैं आगया हूँ।

(दोनों घूमते हैं)

शिष्य—गुरुजी! ये सेठ चंदनदास हैं।

चंदनदास—(पास आकर) जय हो, जय हो आर्य की।

चाणक्य—(अभिनयपूर्वक देखकर) सेठजी। स्वागत हो। यह आसन ग्रहण कीजिए।

चंदनदास—(प्रणाम करके) क्या आर्य नहीं जानते कि—अनुचित सत्कार तिरस्कार से भी अधिक दुःखदायी होता है? इसलिए यहीं अपने योग्य स्थान पर मैं बैठे जाता हूँ।

चाणक्य—नहीं, सेठजी। आप ऐसा न कहिये, हम जैसों के साथ आपका यह व्यवहार उचित ही है। इसलिए आप आसन पर ही बैठिए।

चंदनदास—(स्वगत) जान पड़ता है, इसे किसी बात का पता लग गया है! (प्रकट) जो आर्य की आज्ञा।

(बैठ जाता है)

चाणक्य—सेठ चंदनदासजी! क्या आप लोगों का व्यवसाय भली भाँति चल रहा है?

चंदनदास—(स्वगत) अति आदर शंकनीय होता है। (प्रकट) आर्य! जी हाँ, आर्य की कृपा से मेरा कुछ व्यापार निर्विघ्न-रूप से चल रहा है।

चाणक्य—क्या चंद्रगुप्त के दोषों को देख प्रजा प्राचीन राजाओं के गुणों का कभी स्मरण करती है?

चंदनदास—(कानों पर हाथ रखकर) शिव! शिव! शरद् निशा में उदय हुए पूर्णिमा के चंद्र के समान चंद्रगुप्त की वृद्धि से प्रजा अधिक प्रसन्न होती है।

चाणक्य—सेठजी! यदि यह सही है तो राजा लोग भी प्रसन्न हुई प्रजा से कुछ भलाई की आशा रखते हैं।

चंदनदास—आर्य आज्ञा करें; आर्य कितना धन इस सेवक से चाहते हैं।

चाणक्य—सेठजी! यह चंद्रगुप्त का राज्य है नंद का राज्य नहीं क्योंकि अर्थ-लोलुप नंद को ही अर्थ-लाभ प्रसन्न कर सकता था जबकि चंद्रगुप्त आप लोगों के सुख से संतुष्ट होता है।

चंदनदास—(हर्षपूर्वक) आर्य की बड़ी कृपा है।

चाणक्य—सेठजी! वह सुख कैसे उत्पन्न होता है यह तो आपने नहीं पूछा।

चंदनदास—आर्य! आज्ञा करें।

चाणक्य—सारी बात यह है कि राजा के विरुद्ध आचार नहीं करना चाहिए।

चदनदास—आर्य ! कौन भाग्यहीन ऐसा है, जिसको आर्य विरोधी समझते हैं ?

चाणक्य—पहले तो आप ही हैं।

चदनदास—(दोनों कान ढककर) शिव ! शिव ! शिव ! भला तिनकों और आग का कैसा विरोध ?

चाणक्य—विरोध ऐसा है कि तुमने अब भी राज विरोधी अमात्य राक्षस के परिवार को अपने घर में रख छोड़ा है ?

चदनदास—आर्य ! यह झूठ है, किसी नीच पुरुष ने आर्य से ऐसा कहा है।

चाणक्य—सेठजी ! घबराओ मत, पूर्ववर्ती राजाओं के अनुचर नगर-वासियों के घरों में उनके बिना चाहे भी अपने परिवार को धरोहर के रूप में छोड़कर अन्य देश को चले जाते हैं, इसलिए उनका छिपाना ही दोष उत्पन्न करता है।

चदनदास—आर्य ! यह ठीक है, पहिले मेरे घर में अमात्य राक्षस का परिवार था।

चाणक्य—पहिले 'झूठ है' और अब 'था' ये दोनों वाक्य परस्पर विरोधी हैं।

चदनदास—इतना ही मुझ से वाक्छल हो गया।

चाणक्य—सेठजी ! चद्रगुप्त के राज्य में छल कपट को अवकाश नहीं, इसलिये आप राक्षस के परिवार को सौंप दें, जिससे आप पर से छल खेलने का कलक मिट जाय।

चंदनदास—आर्य ! मैं कह तो रहा हूँ कि— उस समय मेरे घर में अमात्य राक्षस का परिवार था।

चाणक्य—तो अब कहाँ गया ?

चंदनदास—पता नहीं कहाँ गया।

चाणक्य—(मुस्कराकर) सेठजी ! क्या तुम्हें पता नहीं कि साँप तो सिर पर है और बूटी पहाड़ पर ! और सुनो, जिस प्रकार चाणक्य ने नंद को — (इतना कह कर लज्जा का अभिनय करता है) ।

चंदनदास—(स्वगत)

नभ में घन-घोर-गर्जना, वनिता दूर विनाश-काल है;
हिम-पर्वत दिव्य औषधी सिर पै सर्प विराजमान है ।।२४।।

चाणक्य—" जैसे ही अमात्य राक्षस चंद्रगुप्त को मार कर देगा" यह न समझो ! देखो—

शूरवीर नय निपुण सुमंत्री वक्रनास आदिक चपल-
जिस नृप-लक्ष्मी को न सके कर नंदों के रहते अविचल,
अब स्थिरता होने पर उसको द्युति-समान जग-आह्लादक
चन्द्र-सदृश नृप चंद्रगुप्त से चाहे करना कौन पृथक ? ।।२५।।

और भी—

(यह कहकर द्विरद के रक्त को इत्यादि फिर पढ़ता है)

चंदनदास—(स्वगत) फलसत्य मिलने से आत्मश्लाघा फबती है।

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

चाणक्य—शार्ङ्गरव ! पता तो लो, यह क्या बात है ?

शिष्य—जो गुरुजी की आज्ञा ।

(बाहर जाकर शिष्य का पुन प्रवेश)

शिष्य—गुरुजी । महाराज चद्रगुप्त की आज्ञा से यह राज-विरोधी जीवसिद्धि नाम का जैन-साधु अपमानपूर्वक नगर से बाहर निकाला जा रहा है ।

चाणक्य—जैन-साधु । अहह ॥ अथवा भोगे राजद्रोह का फल । देखो सेठ चदनदास । राजविरोधियों को यह राजा ऐसा कठोर दड देता है । इसलिये मित्र के हितकर वचन को मानो, राक्षस का परिवार अर्पण कर दो और चिरकाल तक राजा की कृपा के भाजन बनो ।

चदनदास—मेरे घर में अमात्य राक्षस का कुटुम्ब नहीं है ।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल होता है)

चाणक्य—शार्ङ्गरव ! पता तो लो, यह फिर क्या बात है ?

शिष्य—जो गुरुजी की की आज्ञा ।

(बाहर जाकर शिष्य का पुन प्रवेश)

शिष्य—गुरुजी ! राजा की आज्ञा से इस राज-द्रोही शकटदास कायस्थ को शूली पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे हैं ।

चाणक्य—अपने कर्म का फल भोगे । देखो, सेठजी ! यह राजा राज विरोधियों को ऐसा कठोर दड देता है । यह आपके राक्षस के कुटुम्ब को छिपाने को भी सहन न करेगा, इसलिये पर-कुटुम्ब को सौंप कर अपने कुटुम्ब और प्राणों की रक्षा करो ।

चंदनदास—आर्य ! क्या मुझे भय दिखाते हो ? घर में होने पर भी मैं अमात्य राक्षस के परिवार को नहीं दूँगा न होने पर तो कहना ही क्या ?

चाणक्य—चंदनदास ! यह तुम्हारा निश्चय है ?

चंदनदास—जी हाँ यह मेरा दृढ़ निश्चय है।

चाणक्य—(स्वगत) वाह ! चंदनदास ! वाह !—

अर्थ-लाभ यद्यपि सुलभ, पर-अर्पित-हठ घोर ।
कौन करे यह शिबि-बिना कलि में कर्म कठोर ? ॥२४॥

(प्रकट) चंदनदास ! क्या तुम्हारा यही निश्चय है ?

चंदनदास—जी हाँ।

चाणक्य—(क्रोधपूर्वक) दुरात्मा दुष्ट वणिक् ! तो राज-कोप का फल भोग।

चंदनदास—(दोनों बाँहें पसार कर) मैं तैयार हूँ आप अपने अधिकार के अनुकूल जैसा चाहें करें।

चाणक्य—(क्रोधपूर्वक) शार्ङ्गरव ! मेरी ओर से कालपाशिक और दण्डपाशिक से कह दो कि—'इस दुष्ट वणिक् को शीघ्र फाँसी पर लटका दें।' अथवा रहने दो। दुर्गपाल और विजयपाल से कहो कि—इसके घर की सब अच्छी चीजें लेकर इसे पुत्र-स्त्री-समेत बाँधकर रक्खें जब तक कि मैं चन्द्रगुप्त से कहूँ वही इसको प्राण-दंड की आज्ञा देगा।

शिष्य—जो गुरुजी की आज्ञा। सेठजी ! इधर आ, इधर आ।

चंदनदास—(उठकर) आर्य ! यह मैं आ रहा हूँ। (स्वगत)

सभाग्य मे, मित्र के कारण मेरे प्राण जाते है, न कि अपने अपराध के कारण ।

(घूमकर शिष्य के साथ प्रस्थान)

चाणक्य—(हर्षपूर्वक) अहो ! अब हमने राक्षस को पा लिया ! क्योंकि—

यह ज्यो उसकी विपद में, तजता अप्रिय प्राण ।
निश्चय इसकी विपद में, करे न वह निज त्राण ॥२५॥

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

चाणक्य—शार्ङ्गरव !

(शिष्य का प्रवेश)

शिष्य—गुरुजी आज्ञा कीजिए ।

चाणक्य—देखो, यह क्या है ?

शिष्य—(बाहर जाकर, सोचकर और आश्चर्यान्वित हो फिर आकर) गुरुजी ! शकटदास को फाँसी पर लटकाया ही चाहते थे कि सिद्धार्थक उसे वध्य-भूमि से लेकर भाग गया ।

चाणक्य—(स्वगत) वाह ! सिद्धार्थक ! वाह ! तुमने कार्य आरम्भ कर दिया ! (प्रकट) क्या जबर्दस्ती लेकर भाग गया ? (क्रोधपूर्वक) वत्स ! भागुरायण से कहो कि—शीघ्र ही उसे जाकर खूब साधे ।

(बाहर जाकर शिष्य का पुन प्रवेश)

शिष्य—(दु खपूर्वक) गुरुजी ! अहा ! बडा बुरा हुआ !—भागुरायण भी भाग गया ।

चाणक्य—(स्वगत) जाओ, अपना काम पूरा करो । (क्रोध-सा प्रकट करके, प्रकट) वत्स ! दुखी मत होओ, मेरी ओर से भद्रभट,

दूसरा अंक

स्थान—राजपथ

(सँपेरे का प्रवेश)

सँपेरा—

तंत्र-युक्ति जो जानते, सम्यक् मंडल-ज्ञान,
अहि-नृप-सेवक वे, जिन्हें मंत्र-सुरक्षा-ध्यान ॥ १ ॥

(आकाश की ओर देखकर) आर्य ! क्या कहते हो—'तुम कौन हो ?' मैं जीर्णविष नाम का सँपेरा हूँ। (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो—'मैं भी साँप के साथ खेलना चाहता हूँ ?' अच्छा यह तो बताइए आप काम क्या करते हैं ? (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या यह कहते हो—'मैं राजकुल-सेवक हूँ ?' तो आप तो साँप के साथ खेलते ही हैं। (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो—'कैसे ?' मन्त्र तथा औषधि के मर्म-विहीन सँपेरे, अंकुश-रहित मद-मत्त हाथी का महावत और अधिकार पाकर अभिमान में चूर हुआ राज-सेवक ये तीनों अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं। क्यों ! यह देखते ही देखते आँखों से ओझल हो गया ! (फिर आकाश की ओर देखकर) आर्य ! तुम फिर क्या कहते हो—'इन पिटारियों में क्या है ?' आर्य ! इनमें सर्प हैं, जिनके द्वारा मैं अपनी आजीविका चलाता हूँ ! (फिर आकाश की ओर

देखकर) क्या कहते हो—देखना चाहता हूँ ? कृपा करें, कृपा कर जावें ! क्योंकि यह स्थान ठीक नहीं है। यदि आप अधिक उत्सुक हैं तो आइए इस स्थान पर दिखाऊँगा। (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो—'यह अमात्य राक्षस का घर है यहाँ मैं न आ पाऊँगा ? अच्छा तो जाएँ आप। जीविका के प्रताप से मैं तो यहाँ आ सकता हूँ। क्यों ! यह भी चला गया। (चारों ओर देखकर स्वगत) ओहो ! बड़े आश्चर्य की बात है ! जब मैं चाणक्य की बुद्धि से परिरक्षित चन्द्रगुप्त को देखता हूँ तब मुझे राक्षस का प्रयत्न निष्फल ही प्रतीत होता है, और जब मैं राक्षस की बुद्धि से परिरक्षित मलयकेतु की ओर दृष्टि दौड़ाता हूँ तब मेरे मन में ऐसा भान होता है कि चंद्रगुप्त का राज्य गया ! क्यों

> कौटिल्य-मति-रज्जु से जकड़ी है जिसकी आकृति चंचल
> प्राय मानता मौर्य-वंश की लक्ष्मी को मैं यहाँ ! अचल
> फिर भी उस राक्षस के द्वारा विकर्षित-सी मैं जान रहा,
> उपाय-हस्त जारी से उसको खिंचती-सी मैं मान रहा ॥ २ ॥

तो इस प्रकार इन दोनों सुनीतिशाली मंत्रियों के विरोध में नंद कुल की राज लक्ष्मी संशय में पड़ी है क्योंकि—

> मुख्य सचिवों वन-गजों के मध्य पड़ी हथिनी जैसे
> महाविपिन में संशय-युत हो भय-कम्पित होती, ऐसे
> सचिव-युगल के मध्य पतित यह लक्ष्मी संशय-ग्रस्त हुई,
> इधर उधर है जाती आती थकी अति दुख ग्रस्त हुई ॥ ३ ॥

तो अब मैं अमात्य राक्षस से मिलूं। (घूमकर खड़ा हो जाता है)

(अपने घर में आसन पर बैठे हुए चिंता में डूबे हुए राक्षस का सेवक के साथ प्रवेश)

राक्षस—(ऊपर की ओर देखकर आंखों में आंसू भरकर) ओह ! बड़े दुख की बात है !—

नीति-पराक्रम-गुण से जिसने शांत किए रिपु वृष्णि-समान,
नंद-वंश वह नष्ट किया जब विधि ने करुणा-हीन महान,
चिंतातुर हो निशि-दिन जगते मेरी वह यह चित्र-कला !
भीत-बिना फल-हीन हुई हा ! मैं क्या इसमें करूँ भला ॥४॥

अथवा—

हो पर-सेवा-रत जो करता अतिशय नीति-प्रयोग,
हेतु न भक्ति-हीन हूँ अथवा चाहूँ इंद्रिय-भोग,
प्राण-भीरुता नहीं प्रतिष्ठा की इच्छा है हेतु,
अरि-विनाश से तुष्ट स्वर्ग में हो बस नृप कुल-केतु ॥५॥

(आकाश की ओर देखता हुआ आँखों में आँसू भरकर) भगवती लक्ष्मी ! तू बड़ी अगुणज्ञा है। क्योंकि—

आनंद-हेतु तज हा ! नृप नंद को भी,
क्यों है बनी वृषल की अब प्रेमिका तू ?
होता विनष्ट मद हस्ति विनाश में ज्यों,
तू भी न लीन उनमें चपले ! हुई क्यों ? ॥६॥

(कचुकी का प्रवेश)

कचुकी—

कुचल नद, चाणक्य-नीति ने,
किया मौर्य को पुर-अधिराज;
धर्म-परायण किया मुझे त्यों,
इच्छा मसल, जरा ने आज,
वढते देख मौर्य को राक्षस
चाहे जय करना जैसे,
ठीक वही मम सग लोभ की
वात, करे पर जय कैसे ? ॥ ६ ॥

(देखकर) ये अमात्य राक्षस हैं। (घूमकर और पास जाकर) मत्री जी। कल्याण हो आपका।

राक्षस—आर्य। जाजलि। मैं अभिवादन करता हूँ। प्रियवदक ! आर्य के लिए आसन ले आओ।

(प्रियंवदक का प्रवेश)

प्रियवदक—यह रहा आसन, आर्य विराजें।

कचुकी—(अभिनयपूर्वक बैठकर) मत्रीजी। कुमार मलयकेतु ने अमात्य को सूचित किया है कि—आर्य ने चिरकाल से निज शरीर के उचित शृगार को छोड़ दिया है, इससे मेरे हृदय को बड़ा कष्ट होता है। यद्यपि स्वामी के गुणों को सहसा ही नहीं भुलाया जा सकता, फिर भी आर्य मेरा कहना मान लें, तो अच्छा है। (इतना कह आभूषण

को दिखाकर) मंत्रीजी ! कुमार ने ये आभूषण अपने शरीर से उतार कर भेजे हैं आप इन्हें धारण कर सकते हैं।

राक्षस—आर्य ! जाजलि ! मेरी ओर से कुमार से कहो कि—आपके गुणों के प्रेम के कारण मैं स्वामी के गुणों को भूल गया हूँ। किन्तु—

नर-देव ! जबतक नष्ट कर रिपु-नाश मैं तुमको नहीं
करता समर्पित भूप भवन में स्वर्ण सिंहासन यहीं
तब तक अहो ! परिभव मलिन ये अंग मम अबला यहीं
सह हीन सकते भार कुछ भी भूषणादिक हैं नहीं ॥ १ ॥

कञ्चुकी—मंत्रीजी ! आपके नेतृत्व में कुमार के लिए यह सुलभ है। तो कुमार की प्रथम विनती को स्वीकार कीजिए।

राक्षस—आर्य ! कुमार की आज्ञा के समान मुझे आपकी भी आज्ञा माननीय है इसलिए मैं कुमार की आज्ञा का पालन करता हूँ।

कंचुकी—(अभिनयपूर्वक आभूषणों को पहनाकर) कल्याण हो आपका। मैं जाता हूँ।

राक्षस—आर्य ! मैं प्रणाम करता हूँ।

(कञ्चुकी का प्रस्थान

राक्षस—प्रियम्वदक ! देखो, मुझसे मिलने के लिए कौन द्वार पर खड़ा है ?

प्रियम्वदक—जो आप की आज्ञा। (घूमकर सँपेरे को देखकर) आर्य ! तुम कौन हो ?

सँपेरा—भद्र पुरुष ! में जीर्णविष नाम का सँपेरा हूं। मैं अमात्य राक्षस के सामने साँपों का खेल दिखाना चाहता हूँ।

प्रियवदक—ठहरो, जबतक मैं अमात्य जी को सूचित कर दूं।

(प्रियवदक राक्षस के समीप जाता है)

प्रियवदक—आर्य ! यह सपेरा मन्त्रीजी के सामने सापों का खेल दिखाना चाहता है।

राक्षस—(बाईं आँख का फड़कना प्रकट करके स्वगत) क्यों ! पहले ही सर्प दर्शन ! (प्रकट) प्रियवदक। सर्प दर्शन के लिए हम उत्सुक नहीं हैं। इसलिए इसे कुछ देकर विदा करो।

प्रियवदक—जो आर्य की आज्ञा। (घूमकर सँपेरे के समीप जाकर) भद्र पुरुष ! मन्त्री जी साँपों का खेल नहीं देखना चाहते, वे बिना देखे ही तुम्हें यह उपहार देते हैं।

सँपेरा—भद्र पुरुष। मेरी ओर से अमात्य जी से कह दो कि—'मैं केवल सँपेरा नहीं हूँ। मैं कवि भी हूँ। तो यदि अमात्य साँपों का खेल देखकर उपहार नहीं देते, तो यह पत्र तो पढ़ने की कृपा करें'।

(पत्र देता है)

प्रियवदक—(पत्र लेकर राक्षस के पास जाकर) मन्त्री जी ! यह सँपेरा सूचित करता है कि—'मैं केवल सँपेरा नहीं हूँ। मैं कवि भी हूँ। तो यदि अमात्य साँपों का खेल देखकर उपहार नहीं देते, तो यह पत्र तो पढ़ने की कृपा करें'।

राक्षस—(पत्र लेकर पढ़ता है)—

पीकर मधुकर कुसुम-रस, कौशल से निज आर्य।
उसे उगलता जो यहाँ, करता वह पर-कार्य ॥ ११ ॥

राक्षस—(स्वगत) अहा! 'मैं कुसुमपुर का वृत्तान्त जानने वाला आपका गुप्तचर हूँ' यह इस कविता का अर्थ है। आः! मन के कार्य-व्याकुल और बहुत से गुप्तचर होने के कारण मैं भूल गया था, अब मुझे स्मरण आया है। यह स्पष्ट है कि यह सँपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है। (प्रकट) प्रियंवदक! इसको बुला लो; यह अच्छा कवि है मैं इसकी कविता सुनना चाहता हूँ।

प्रियंवदक—जो आर्य की आज्ञा।

(सँपेरे के समीप जाता है)

प्रियंवदक—चले आइए, आप।

सँपेरा—(आश्चर्यपूर्वक समीप जाकर और देखकर स्वगत) अहा! ये मन्त्री विराजमान हैं।

लक्ष्मी यद्यपि है झुकी चन्द्रगुप्त की ओर।
खिसकन देता है नहीं इनका यत्न कठोर ॥ १ ॥

(प्रकट) जय हो जय हो मन्त्री जी।

राक्षस—(देखकर) अहा! विराध— [बीच में ही स्मरण कर] प्रियंवदक! अब सर्पों के साथ मन बहलाऊँगा; इसलिए परिचारक लोग विश्राम करें। तुम भी अपने स्थान पर जाओ।

प्रियंवदक—जो मन्त्री जी की आज्ञा।

(सेवकों के साथ प्रस्थान)

राक्षस—मित्र । विराधगुप्त ! इस आसन पर बैठो ।

विराधगुप्त—जो मन्त्रीजी की आज्ञा ।

(अभिनयपूर्वक बैठ जाता है)

राक्षस—(दुःखपूर्वक गौर से देखकर) ओह । महाराज के चरण-कमलों के उपासक जनों की ऐसी दुर्दशा !

(रोने लगता है)

विराधगुप्त—मन्त्रीजी ! शोक न कीजिए , वह समय दूर नहीं है, जब कि आप हमें अवश्य ही पुरानी अवस्था को पहुँचा देंगे ।

राक्षस—मित्र । विराधगुप्त । अब कुसुमपुर का समाचार कह सुनाओ ।

विराधगुप्त—मन्त्रीजी । कुसुमपुर का वृत्तांत बड़ा लम्बा-चौड़ा है , तो आज्ञा कीजिए, कहाँ से कहना आरंभ करूँ ?

राक्षस—मित्र । चन्द्रगुप्त ने जब से नगर में प्रवेश किया है, तब से हमारे नियुक्त किए हुए विष देने वाले पुरुषों ने क्या किया, यह मैं आरंभ से सुनाना चाहता हूँ ।

विराधगुप्त—यह मैं आपको सुनाता हूँ । चाणक्य की बुद्धि से संचालित, शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक, वाल्हीक आदि से युक्त होने के कारण प्रलय-काल में उछलते हुए जल वाले सागरों का अनुकरण करने वाली चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर की सेनाओं ने कुसुमपुर को चारों ओर से घेर लिया ।

राक्षस—(तलवार खींचकर क्रोधपूर्वक) आः । मेरे रहते कौन कुसुमपुर को घेर सकता है ? प्रवीरक । प्रवीरक ! अब जल्दी ही —

कूट-बुद्धि चाणक्य ने दारुवर्मा से बिना कहे ही राज-भवन के द्वार को सज्जित किया है इस बात से प्रसन्न होकर दारुवर्मा की निपुणता की बड़ी प्रशंसा की और कहा—'दारुवर्मा ! शीघ्र ही तुम्हें इस चातुर्य का उचित फल मिलेगा ।

राक्षस—(उद्विग्न होकर) मित्र ! कूट-बुद्धि चाणक्य कैसे प्रसन्न हो सकता है ? मेरे विचार में दारुवर्मा का प्रयत्न या तो निष्फल होगा या उसका बुरा परिणाम होगा । क्योंकि इसने मति-भ्रम होने के कारण अथवा अत्यंत राज भक्त होने के कारण आज्ञा-काल की प्रतीक्षा न करके, कूट बुद्धि चाणक्य के मन में महान सन्देह उत्पन्न कर दिया है । अच्छा फिर ?

विराधगुप्त—उस दुष्ट चाणक्य ने शिल्पियों और नगर-निवासियों को इस बात की सूचना देकर कि—अनुकूल लग्न होने के कारण आज आधी रात के समय चन्द्रगुप्त का नंद भवन में प्रवेश होगा उसी समय, पर्वतेश्वर के भाई वैरोचक और चन्द्रगुप्त का एक आसन पर बैठाकर पृथ्वी के राज्य को दोनों में आधा-आधा बाँट दिया ।

राक्षस—क्या पर्वतेश्वर के भाई वैरोचक को पूर्व-प्रतिज्ञात आधा राज्य दे दिया ?

विराधगुप्त—जी हाँ ।

राक्षस—(स्वगत) सचमुच इस धूर्त ब्राह्मण ने उस बेचारे को भी किसी गुप्त उपाय से मार देने का निश्चय करके, पर्वतेश्वर की मृत्यु से उत्पन्न अपयश को दूर करने के लिये यह संसार का विश्वास दिखाने की बात सोची है । (प्रकट) हाँ, फिर ?

विराधगुप्त—तब, यह तो पहले ही प्रसिद्ध कर दिया गया था कि आधी रात के समय चंद्रगुप्त नंद-भवन में प्रवेश करेगा। तो उसने क्या किया कि वैरोचक का अभिषेक किया, उसे निर्मल मोतियों की लड़ियों से सुसज्जित वस्त्र-कवच से अलंकृत किया गया, सुंदर सिर पर मणियों का बना मुकुट बड़ी दृढ़ता के साथ बाँधा गया, गले में सुगंधित कुसुमों की मालाएँ यज्ञोपवीत के समान पहनाई गईं, जिनसे उसका वक्ष स्थल जगमगाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके अत्यंत परिचित मित्र भी उसे न पहचान सके। फिर जब वैरोचक चाणक्य की आज्ञा से चंद्रलेखा नामक चंद्रगुप्त की हथिनी पर चढ़कर, चंद्रगुप्त के अनुगामी राजाओं के साथ बड़ी तेजी से महाराज नंद के भवन में प्रवेश करने लगा, तब आपके नियुक्त किए हुए शिल्पी दारुवर्मा ने उसे चंद्रगुप्त समझकर उसके ऊपर यंत्र-तोरण गिराने के लिये तैयार कर लिया। इसी समय चंद्रगुप्त के अनुगामी राजा लोग तो बाहर घोड़ों को रोककर खड़े हो गए और आपके ही नियुक्त किए हुए चंद्रगुप्त के महावत वर्वरक ने, सोने की छड़ी के भीतर छिपी हुई छुरी को खींचने की इच्छा से अपने सोने की गुर्ती को, जिस पर सोने की जंजीर लटक रही थी, हाथ में ले लिया।

राक्षस—दोनों का ही यत्न बेमौके है। तब, फिर?

विराधगुप्त—इसके बाद जब हथिनी ने देखा कि मुझ पर अंकुश पड़ने ही वाला है, तो वह अधिक तेज होने से एकदम दौड़ पड़ी। उसके बाद, पहली चाल का ध्यान करके पकड़कर छोड़े हुए, बिना लक्ष्य ही गिरते हुए यंत्र तोरण के द्वारा, दारुवर्मा ने, बेचारे वर्वरक को, जिसका हाथ

माथारों पर शर बरसावें, धन्वी योधा चारों ओर,
द्वारों पर डट जावें मतंगज मेरे हस्ति-घटा घनघोर,
रख प्राण हथेली पर आ निकस रिपु-पक्ष में विक्रम-उत्सुक,
कूच करें ये एक-हृदय हो संग में मेरे पराक्रम-युक ॥१३॥

विराधगुप्त—मंत्रीजी ! क्रोध न कीजिए। मैं यह बीती बात कह रहा हूँ।

राक्षस—(गहरी साँस लेकर) दुःख की बात है। क्या यह हुआ है। मैंने तो समझा कि यह वही समय है। (तलवार खींचकर आँखों में आँसू भर कर) हा ! देव नंद ! राक्षस के प्रति तुम्हारी महती कृपा को मैं भूला नहीं हूँ। ऐसे समय में तुमने—

यह हस्ति-घटा जहाँ जाती चली मन नीचा वहीं बस राक्षस जावे
इस नीर-प्रवाह के तुल्य चली हय-सेना को राक्षस दूर भगावे
इस पैदल फौज को, पर संयोग अभी यह राक्षस स्वयं पठावे
यह आज्ञा मुझे सब दी समझा, पुर राक्षस-सृष्टि अनेक रचावे ॥१४

तब फिर।

विराधगुप्त—तब कुसुमपुर को चारों ओर से घिरा हुआ देखकर जब महाराज सर्वार्थसिद्धि पुर-वासियों पर बहुत दिनों तक होने वाले उपर्युक्त अन्य महान अत्याचार को सहन न कर सके तो वे उस अवस्था में पुर-वासियों की अनुमति से सुरंग के द्वारा निकल कर तपोवन को चले गए। स्वामी न होने से आपकी सेनाओं के सब प्रयत्न ढीले पड़ गए। नगर में जो चन्द्रगुप्त की जय-घोषणा में करने का साहस करते थे वे

आपकी सेना के ही आदमी हैं—ऐसा अनुमान किया जाने लगा। और आप नद-राज्य को पुन प्राप्त करने के उद्देश से सुरग के द्वारा बाहर निकल गए। और चद्रगुप्त को मारने के लिए जो विष-कन्या आपने नियुक्त की थी, उससे बेचारा पर्वतेश्वर मारा गया।

राक्षस—मित्र! देखो, कैसे आश्चर्य की बात है—

रक्खी अर्जुन-प्राण-नाश करने ज्यों शक्ति थी कर्ण ने,
रक्खी त्यों विष-कन्यका निधन को मैंने अहो! मौर्य के।
मारा था उसने घटोत्कच यथा श्री विष्णु के श्रेय को,
मारा पर्वतराज हाय! इसने कौटिल्य के श्रेय को ॥१५॥

विराधगुप्त—मत्रीजी! दैवेच्छा! क्या किया जाय?

राक्षस—तब, फिर?

विराधगुप्त—तब, कुमार मलयकेतु, पिता के वध से घबराकर, कुसुमपुर छोड़कर चला गया। और पर्वतेश्वर के भाई वैरोचक को आश्वासन दे नीच चाणक्य ने, नद भवन में चद्रगुप्त के प्रवेश को प्रसिद्ध करके, कुसुमपुर निवासी सभी शिल्पियों को बुलाकर कहा कि—'क्योकि ज्योतिषियों के कथनानुसार आज ही आधी रात के समय चद्रगुप्त नद-भवन में प्रवेश करेंगे, इसलिए प्रथम द्वार से लेकर सारे राजमहल की देख भाल कर लो।' इस पर शिल्पियों ने कहा कि—'आर्य! जब शिल्पी दारुवर्मा को यह पता लगा कि महाराज चद्रगुप्त आज नद-भवन में प्रवेश करेंगे, तो उसने पहले ही स्वर्णमय तोरण की रचना को ठीक-ठाक करके प्रथम राज द्वार को सजा दिया है। अब हम भीतर ठीक करेंगे।' तब

चन्द्र-बुद्धि चाणक्य ने दारुवर्मा ने बिना कहे ही राज-भवन के द्वार को सज्जित किया है इस बात से प्रसन्न होकर दारुवर्मा की निपुणता की बड़ी प्रशंसा की और कहा—'दारुवर्मा ! शीघ्र ही तुम्हें इस चातुर्य का उचित फल मिलेगा !'

राक्षस—(उद्विग्न होकर) मित्र ! चन्द्र-बुद्धि चाणक्य कैसे प्रसन्न हो सकता है ! मेरे विचार में दारुवर्मा का प्रयत्न या तो निष्फल होगा या उसका बुरा परिणाम होगा। क्योंकि इसने मति-भ्रष्ट होने के कारण अथवा अत्यंत राज भक्त होने के कारण आज्ञा-काल की प्रतीक्षा न करके, चन्द्र-बुद्धि चाणक्य के मन में महान संशय उत्पन्न कर दिया है। अच्छा फिर ?

विराधगुप्त—तब दुष्ट चाणक्य ने शिल्पियों और नगर-निवासियों को इस बात की सूचना देकर कि—'अनुकूल लग्न होने के कारण आज आधी रात के समय चन्द्रगुप्त का नव भवन में प्रवेश होगा' उसी समय, पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक और चंद्रगुप्त को एक आसन पर बैठाकर पृथ्वी के राज्य को दोनों में आधा-आधा बाँट दिया।

राक्षस—क्या पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक को पूर्व-प्रतिज्ञात आधा राज्य दे दिया ?

विराधगुप्त—जी हाँ।

राक्षस—(स्वगत) सचमुच इस महाधूर्त ब्राह्मण ने, उस बेचारे को भी किसी गुप्त-उपाय से मार देने का निश्चय करके, पर्वतेश्वर की मृत्यु से उत्पन्न अपयश को दूर करने के लिये यह संसार को विश्वास दिखाने की बात सोची है। (प्रकट) हाँ, फिर ?

विराधगुप्त—तब, यह तो पहले ही प्रसिद्ध कर दिया गया था कि आधी रात के समय चद्रगुप्त नद भवन मे प्रवेश करेगा। तो उसने क्या किया कि वैरोचक का अभिषेक किया, उसे निर्मल मोतियों की लड़ियां से सुसज्जित वस्त्र-कवच से अलकृत किया गया, सुदर सिर पर मणियों का बना मुकुट बड़ी दृढता के साथ बाँधा गया, गले में सुगंधित कुसुमा की मालाएँ यज्ञोपवीत के समान पहनाई गई, जिनसे उसका वक्ष स्थल जगमगाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके अत्यत परिचित मित्र भी उसे न पहचान सके। फिर जब वैरोचक चाणक्य की आज्ञा से चद्रलेखा नामक चद्रगुप्त की हथिनी पर चढकर, चद्रगुप्त के अनुगामी राजाओं के साथ बड़ी तेजी से महाराज नद के भवन में प्रवेश करने लगा, तब आपके नियुक्त किए हुए शिल्पी दारुवर्मा ने उसे चद्रगुप्त समझकर उसके ऊपर यत्र-तोरण गिराने के लिये तैयार कर लिया। इसी समय चद्रगुप्त के अनुगामी राजा लोग तो बाहर घोड़ों को रोककर खड़े हो गए और आपके ही नियुक्त किए हुए चद्रगुप्त के महावत बर्बरक ने, सोने की छड़ी के भीतर छिपी हुई छुरी को खींचने की इच्छा से अपने सोने की गुर्ती को, जिस पर सोने की जजीर लटक रही थी, हाथ मे ले लिया।

राक्षस—दोनों का ही यत्न वे मौके है। तब, फिर?

विराधगुप्त—इसके बाद जब हथिनी ने देखा कि मुझ पर अकुश पड़ने ही वाला है, तो वह अधिक तेज होने से एकदम दौड़ पड़ी। उसके बाद, पहली चाल का ध्यान करके पकड़कर छोड़े हुए, बिना लक्ष्य ही गिरते हुए यत्र तोरण के द्वारा, दारुवर्मा ने, बेचारे बर्बरक को, जिसका हाथ

हुई को खींचने में व्यग्र था और जो वैरोचक को प्राप्त न कर सका था, चन्द्रगुप्त समझकर मार दिया। उसके बाद दारुवर्मा ने अब तारण के गिरा देने से अपनी मृत्यु को निश्चित समझकर, ऊपर तारण के उठंग ग विशर पर चढ़कर यन्त्र का चलाने वाली लोहे की कील को हाथ में लेकर उसके द्वारा हथिनी पर सवार हुए बेचारे वैरोचक को मार डाला।

राक्षस—दुःख है! दो अनर्थों ने आ घेरा! चंद्रगुप्त तो बच गया और वरोचक तथा बर्बरक दोनों मारे गए। (आवेगपूर्वक स्वगत) ये दोनों नहीं मारे गए, दैव ने हमें ही मार दिया। (प्रकट) अच्छा तो वह शिल्पी दारुवर्मा कहाँ है?

विराधगुप्त—उस वैरोचक के आगे चलने वाले पदातियों ने उसे मारकर मार डाला।

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) ओह! बड़े दुःख की बात है कि प्रियमित्र दारुवर्मा हमें छोड़ कर चला गया। अच्छा तो वहाँ के निवासी वैद्य अभयदत्त ने क्या किया?

विराधगुप्त—मन्त्रीजी! उसने सब कुछ किया।

राक्षस—(हर्षपूर्वक) क्या दुरात्मा चंद्रगुप्त को मार दिया?

विराधगुप्त—मन्त्रीजी! दैव वश मरने से बच गया।

राक्षस—(दुःखपूर्वक) तो तुम किस लिए अब संतुष्ट होकर कह रहे हो कि—'उसने सब कुछ किया?'

विराधगुप्त—मन्त्री जी! उसने विष-चूर्ण से मिश्रित औषध चन्द्रगुप्त के लिए तैयार की। किंतु दुष्ट चाणक्य ने उसकी बेपरवाह की

और स्वर्ण-पात्र में उसका रंग बदला हुआ जानकर चंद्रगुप्त से कहा कि— 'चंद्रगुप्त। इस औषध में विष मिला जान पड़ता है, इसे न पीना'।

राक्षस—यह ब्राह्मण सचमुच बड़ा धूर्त है। अच्छा, उस वैद्य का क्या हुआ है ?

विराधगुप्त—उसे वही औषध पिला दी और वह मर गया।

राक्षस—(दुःख से) अ ह ह। आयुर्वेद का प्रकांड पंडित सदा के लिए संसार से विदा हो गया। भद्रपुरुष। अच्छा तो शयनागार में नियुक्त उस प्रमोदक का क्या हुआ ?

विराधगुप्त—उसका भी जीवन समाप्त हुआ।

राक्षस—(दुःखपूर्वक) सो कैसे ?

विराधगुप्त—उस मूर्ख ने आपके दिए महान धन को पाकर, खूब बढ़ा-चढ़ा कर खर्च कर ठाट-बाट रखना आरंभ किया। तब, दुष्ट चाणक्य ने उससे जब यह पूछा कि—'तुम्हारे पास यह इतना धन कहाँ से आया ?' तो वह तरह-तरह की बातें बनाने लगा। इस पर दुष्ट चाणक्य ने उसे आश्चर्यजनक रीति से मरवा डाला।

राक्षस—(उद्विग्न होकर) क्यों ! यहाँ भी दैव ने हम पर ही प्रहार किया ? अच्छा, सोते हुए चंद्रगुप्त के शरीर पर प्रहार करने के लिए नियुक्त, राजा के शयनागार की भीतरी सुरंग में निवास करने वाले वीभत्सक आदि का क्या समाचार है ?

विराधगुप्त—मंत्री जी ! बुरा समाचार है।

राक्षस—(दुःख पूर्वक) कैसे बुरा समाचार है ? क्या उन्हें, वहाँ रहते हुए, नीच चाणक्य ने जान लिया ?

विराधगुप्त—जी हाँ।

राक्षस—सो कैसे?

विराधगुप्त—चंद्रगुप्त के शयनागार में जाने के पहले ही दुरात्मा चाणक्य ने वहाँ घुसते ही चारों ओर दृष्टि दौड़ाई; उसके बाद उसने भीत के एक छिद्र में से चावल के टुकड़े लेकर निकलती हुई चींटियों की पंक्ति को देखकर यह निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर पुरुष रहते हैं इसलिए उसने उस शयनागार में आग लगवा दी। आग जब धधकने लगी तो आँखों में धुआँ भर जाने और बाहर निकलने के मार्ग के पहले ही बंद कर देने के कारण मार्ग न मिलने से वे सभी बीभत्सक आदि वहीं आग में जल गए और मर गए।

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) मित्र! देखो चंद्रगुप्त के सौभाग्य से सभी मर गए। (चिंतापूर्वक) मित्र! देखो, चंद्रगुप्त का भाग्य कैसा प्रबल है! क्योंकि—

> कन्या जो विष की बनी निभृत थी भेजी उसे मारने
> मारा पर्वतराज हाय! उसने राज्यार्द्ध भागी वही।
> यंत्रों में विष आदि में नियत जो थे हा! उन्हींसे मर
> मेरी नीति अनेक श्रेय करती देखो उसी मौर्य का ॥१६॥

विराधगुप्त—फिर भी पकड़े हुए काम को छोड़ना नहीं चाहिए। देखो—

> विघ्न-भीति से नीच न करते कभी कार्य आरंभ,
> मध्यम विघ्न-विहत हो रुकते, करके भी आरंभ

बार-बार भी आकर रोकें, चाहे विघ्न महान,
कार्य हाथ ले पूरा करते, तुम-से ही गुणवान ।। १७ ।।

और सुनो—

यदि फेंकता पृथ्वी न क्या दुख शेष को होता नहीं ?
होता न जो स्थिर, श्रम अहो। दिवसेश को होता नहीं ?
पकडी हुई पर बात तजने में सुजन लज्जित महा,
'निर्वाह पकडी बात का' यह गोत्र व्रत उनका यहाँ ।।१८।।

राक्षस—मित्र। 'पकड़ी बात नहीं छोड़नी चाहिए' यह तो आप लोग प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं। तब, फिर ?

विराधगुप्त—तब से लेकर नीच चाणक्य चन्द्रगुप्त के शरीर के विषय में पहले की अपेक्षा हजारों गुना अधिक सावधान रहता है। उसने कुसुमपुर-वासी आपके विश्वस्त पुरुषों को 'ये ही इस प्रकार की बातें करते हैं' यह पता लगाकर दण्ड दे दिया।

राक्षस—(दुखी होकर) मित्र। कहो, कहो, किस किसको दण्ड दे दिया ?

विराधगुप्त—मन्त्री जी। पहले-पहल तो उसने क्षपणक जीवसिद्धि को अपमानपूर्वक नगर से निकाल दिया।

राक्षस—(स्वगत) इतनी बात सही जा सकती है, क्योंकि वह विषयासक्ति हीन है, निर्वास उसे दुखी न करेगा। (प्रकट) मित्र! उसे किस अपराध के कारण नगर से निकाल दिया ?

विराधगुप्त—इसलिए कि—'इस दुरात्मा ने राक्षस के द्वारा प्रयुक्त विष-कन्या के द्वारा पर्वतेश्वर को मार डाला।'

राक्षस—(स्वगत) वाह ! कौटिल्य ! वाह !

दूर किया निज दोष, दिया यह तुमने हमको,
अर्द्ध-राज्य-अधिकारि उसे भी सौंपा यम को।
एक नीति का बीज यदपि तुम हो बोते,
भिन्न भिन्न फल किन्तु यहाँ पर उसके होते ॥१९॥

(प्रकट) हाँ फिर।

विराधगुप्त—उसके बाद उसने शकटदास को, यह प्रसिद्ध करके कि—इसने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए दारुवर्मा आदि को नियुक्त किया था फाँसी पर लटका दिया।

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) हा ! मित्र ! शकटदास ! तुम्हारी यह इस प्रकार की मृत्यु अनुचित है। अथवा तुमने स्वामी के लिए प्राणों की बलि चढ़ाई है इस लिये तुम शोचनीय नहीं हो ; इस विषय में तो हम ही शोचनीय हैं जो नन्द-वंश के नष्ट होने पर भी प्राणों से मोह करते हैं।

विराधगुप्त—मन्त्रीजी ! आप स्वामी के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही प्रयत्नशील हैं।

राक्षस—मित्र !

जीवन इच्छा से न रहा इसी बात का ध्यान।
जाते नृप-पीछे न हम स्वर्ग कृतघ्न महान ॥२०॥

विराधगुप्त—मंत्रीजी ! यह बात यों नहीं है । ('जीवन-इच्छा न न ' इत्यादि फिर पढ़ना है)

राक्षस--मित्र ! कहो, मैं दूसरी भी मित्र-विपत्ति सुनने के लिए तयार हूँ ।

विराधगुप्त—इसके बाद चंदनदास को जब इस बात का पता लगा, तो उसने भयभीत होकर अमात्य के परिवार को अन्य स्थान पर पहुँचा दिया ।

राक्षस—मित्र चंदनदास ने दुष्ट चाणक्य के विरुद्ध अनुचित काम किया ।

विराधगुप्त—मंत्रीजी ! मित्र द्रोह तो और अधिक अनुचित था।

राक्षस —तब, फिर ?

विराधगुप्त—तब, जब कि माँगने पर भी उसने अमात्य के परिवार को नहीं सौंपा, तब जड़-बुद्धि चाणक्य ने क्रुद्ध होकर

राक्षस—(उद्विग्न होकर) उसे मार डाला ?

विराधगुप्त--मंत्रीजी ! मारा नहीं, किंतु घर की सब धन-दौलत लेकर पुत्र-स्त्री-सहित बाँधकर कारागार में डाल दिया ।

राक्षस—तब क्यों प्रसन्न होकर कह रहे हो कि—'उसने राक्षस के कुटुंब को अन्य स्थान पर पहुँचा दिया ?' फिर तो यह कहना चाहिए कि--'उसने स-कुटुंब राक्षस को बाँध लिया ।'

(परदे को हटाते हुए प्रियंवदक का प्रवेश)

प्रियंवदक—जय हो आर्य का ! आर्य ! शकटदास द्वार पर खड़े हैं ।

राक्षस—प्रियंवदक ! सचमुच ?

प्रियंवदक—श्री चरणों में कभी झूठ भी बोल सकता हूँ ?

राक्षस—मित्र ! विराधगुप्त ! यह कैसे ?

विराधगुप्त—मन्त्रीजी ! यह संभव हो सकता है क्योंकि दैव भव्य पुरुष की रक्षा करता है ।

राक्षस—प्रियंवदक ! यदि ऐसी बात है, तो क्यों विलम्ब करते हो ? उन्हें जल्दी लिवा लाओ ।

प्रियंवदक—जो मन्त्रीजी की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(सिद्धार्थक के साथ शकटदास का प्रवेश)

शकटदास—(देखकर स्वगत)—

पृथ्वी में गड़े के अतिरिक्त हुआ ज्यों मौर्य की शूल-सा
धारी श्री-सम बन्ध-माल उसकी चित्त-व्यथा-कारिणी
दोनों का सुन घोर शब्द नृप के आघात से जो कड़ा
टूटा चित्त न पूर्ण चोट उसमें से हेतु हूँ जानता ॥२१॥

(प्रतिज्ञापूर्वक देखकर हर्ष से) वे अमात्य राक्षस बैठे हैं जो—

करते हैं प्रभु-नाश में प्रण हित कार्य महान ।
प्रभु-भक्तों में अवनि में हैं ये परम प्रमाण ॥२२॥

(समीप पहुँचकर) जय हो अमात्य की ।

राक्षस—(देखकर प्रसन्नतापूर्वक) मित्र शकटदास !

सौभाग्य से, चाणक्य के फंदे में पड़ जाने के बाद भी तुम्हें मैं देख सका हूँ, तो आओ, मुझसे गले लगकर मिलो।

(शकटदास राक्षस से गले लगकर मिलता है)

राक्षस—(उससे मिलकर) यह आसन है, विराजिए।

शकटदास—जो मन्त्रीजी की आज्ञा।

(अभिनयपूर्वक बैठ जाता है)

राक्षस—मित्र। शकटदास। अच्छा यह बताओ—मुझे यह हार्दिक आनंद कैसे मिला?

शकटदास—(सिद्धार्थक की ओर निर्देश करके) मन्त्रीजी। प्रिय मित्र सिद्धार्थक वध्य-भूमि से घातकों को हटाकर मुझे ले आए हैं।

राक्षस—(प्रसन्नतापूर्वक) भद्र। सिद्धार्थक। तुम्हारी इस भलाई के लिए यद्यपि यह सर्वथा अपर्याप्त है, फिर भी ग्रहण करो। (अपने गात्र से आभूषण उतारकर देता है)

सिद्धार्थक—(आभूषण ले चरणों में गिरकर स्वगत) ऐसी ही आर्य चाणक्य की आज्ञा है, वह पूर्ण हो, मैं उनके वचन का पालन करूँगा। (प्रकट) मन्त्रीजी। क्योंकि मैं यहाँ पहली बार ही आया हूँ, इसलिए मेरा यहाँ कोई परिचित नहीं है, जिसे कि मैं अमात्य के इस दया-स्वरूप पारितोषिक को सौंपकर निश्चित हो जाऊँ, इससे मेरी इच्छा है कि मैं इस पर यह मोहर लगाकर इसे अमात्य के ही समीप रख छोड़ूँ। जब मुझे इसकी आवश्यकता होगी, तब ले लूँगा।

राक्षस—भद्र पुरुष। यही सही, इसमें क्या हानि है? शकटदास! ऐसा ही करो।

शकटदास—जो आज्ञा। (मोहर देखकर धीरे से) मंत्री जी! इस मुद्रा पर आपका नाम खुदा है।

राक्षस—(देखकर दुःखपूर्वक विचार करता हुआ स्वगत) यह तो सचमुच नगर से निकलते हुए मेरे हाथ से ब्राह्मणी ने अपने मनोविनोदार्थ ले ली थी। तो इसके हाथ में कैसे पहुँच गई। (प्रकट) भद्र! सिद्धार्थक! तुम्हें यह कहाँ से मिली?

सिद्धार्थक—मंत्रीजी! कुसुमपुर में सेठ चंदनदास नाम का एक जौहरी रहता है, उसके घर के दरवाजे पर पड़ी थी, मैंने उठा ली।

राक्षस—यह हो सकता है।

सिद्धार्थक—मंत्रीजी! क्या हो सकता है?

राक्षस—भद्र! यही कि धनवानों के घर में इस प्रकार की वस्तु पड़ी हुई मिल सकती है।

शकटदास—मित्र! सिद्धार्थक! इस मुद्रा पर अमात्य का नाम खुदा है इसलिए इस मुद्रा की अपेक्षा अधिक मूल्यवान वस्तु देकर अमात्य आपको संतुष्ट करेंगे; इसलिए यह मुद्रा दे दो।

सिद्धार्थक—आर्य! इससे मुझे इनाम है, जो अमात्य इस मुद्रा को पाकर प्रसन्न होते हैं।

(मुद्रा दे देता है)

राक्षस—मित्र! शकटदास! इसी मुद्रा से आप अपना सब काम किया करें।

शकटदास—जो मंत्रीजी की आज्ञा।

सिद्धार्थक—मंत्रीजी ! आपसे कुछ निवेदन करूँ ?

राक्षस—भद्र पुरुष ! बे-खटके कहो।

सिद्धार्थक—यह तो अमात्य जानते ही हैं कि दुष्ट चाणक्य के साथ बिगाड़कर मैं फिर पाटलिपुत्र में नहीं घुस सकता हूँ, इसलिए मैं चाहता हूँ कि अमात्य के ही सुंदर चरणों की सेवा करूँ।

राक्षस—भद्र पुरुष ! यह हमें अभीष्ट है, किंतु तुम्हारी इच्छा को जानने के लिए हम चुप थे, तो आप यहीं रहें।

सिद्धार्थक—(प्रसन्न होकर) आपने बड़ी कृपा की।

राक्षस—मित्र। शकटदास ! सिद्धार्थक के विश्राम के लिए सब प्रबंध कर दो।

शकटदास—जो मंत्रीजी की आज्ञा।

(सिद्धार्थक के साथ प्रस्थान)

राक्षस—मित्र ! विराधगुप्त ! अब कुसुमपुर का शेष वृत्तांत कहो। क्या कुसुमपुर में रहने वाली चंद्रगुप्त की प्रजा हमारी भेद-नीति को सहन करती है ?

विराधगुप्त—मंत्रीजी ! हाँ, सहन करती है, और राजा, मंत्री भी परस्पर झगड़ पड़ते हैं।

राक्षस—मित्र। उसमें क्या कारण है ?

विराधगुप्त—मंत्रीजी ! उसमें कारण यह है कि जब से मलयकेतु भागा है, तब से चंद्रगुप्त ने चाणक्य को तंग करना आरंभ कर दिया है, चाणक्य भी महाघमंडी होने के कारण वह न सहकर चंद्रगुप्त की उन-

उन आज्ञाओं को भंग करके उसके चित्त को व्याकुल करता रहता है। यह भी मैंने अनुभव किया है।

राक्षस—(प्रसन्नतापूर्वक) मित्र! विराधगुप्त! तो तुम फिर उस सँपेरे का वेश बनाकर कुसुमपुर ही जाओ। क्योंकि वहाँ वैतालिक के वेश में मेरा मित्र स्तनकलश रहता है। उससे मेरी ओर से कहना कि—'चाणक्य जब कभी आज्ञा भंग करे, तुम तभी चंद्रगुप्त को कवित्व द्वारा स्तुति करके भड़काओ; और अपने कार्य की करभक द्वारा सूचना देते रहो।'

विराधगुप्त—जो मंत्रीजी की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(प्रियंवदक का प्रवेश)

प्रियंवदक—जय हो अमात्य की। मंत्रीजी! शकटदास सूचित करते हैं कि ये तीन कीमती आभूषण बिकते हैं, इसलिए मंत्रीजी देख लें।

राक्षस—(देखकर स्वगत) अहो! बड़े कीमती आभूषण हैं! (प्रकट) भद्र पुरुष! शकटदास से कहो कि—विक्रेता को उचित मूल्य देकर ले लें।

प्रियंवदक—जो मंत्रीजी की आज्ञा।

(प्रस्थान)

राक्षस—(स्वगत) अब तक मैं भी चलकर करभक को कुसुमपुर भेजता हूँ। (उठकर) क्या दुरात्मा चाणक्य की चंद्रगुप्त से बिगड़ सकती है? अथवा मैं अपनी इच्छा को पूर्ण हुई समझता हूँ। क्योंकि—

चन्द्रगुप्त को गर्व यही है—
'नृप-गण को देता आदेश'
गर्व यही चाणक्य विप्र को—
'ले मम आश्रय बना नरेश'
नृपति बना है एक, अन्य ने—
किया शपथ-जलनिधि उत्तीर्ण,
कृत-कृत्य हुए उन दोनों का—
सचमुच होगा स्नेह विशीर्ण ॥ २३ ॥

(सब का प्रस्थान)

—:※:—

तीसरा अंक

स्थान—राजप्रासाद की अटारी

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—

तृष्णे ! तूने विषय-तृषा को भोग के इन्द्रियों से
भोगा भारी पर हा हत हुईं इन्द्रियाँ भोग में ये।
आज्ञाकारी सब मम सभी अंग ढीले पड़े हैं,
तेरे ही तो सिर पर जरा ने रखा फूलती क्यों ? ॥ १ ॥

(घूमकर आकाश की ओर देखकर) ऐ-ऐ ! सुगांग प्रासाद में काम करने वाले पुरुषो ! माननीय महाराज चंद्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि—'मैं कौमुदी महोत्सव होने के कारण अत्यन्त सुन्दर कुसुमपुर को देखने के लिए समुत्कण्ठित हूँ; इसलिए सुगांग प्रासाद की दर्शनीय अटारियों को सुसज्जित कर दो।' तो क्यों आप लोग विलम्ब कर रहे हैं ? (आकाश की ओर देखकर और सुनकर) आर्य ! क्या कह रहे हो कि—'क्या महाराज चंद्रगुप्त को यह पता ही नहीं कि कौमुदी महोत्सव बंद कर दिया गया है ?' अरे अभागो ! क्यों तुम यह मरने की बात छेड़ रहे हो ! अब जल्दी ही—

संपूर्ण शशि-कर-चंद्र-सुंदर चँवर की छवि से पगे—
हों स्तम सुरभित धूप से स्रक्-जाल से अति जगमगे;
सिंहांक-आसन प्राप्त कर चिरकाल तक मूर्च्छित हुई,
हो शीघ्र चंदन-सलिल से गौ कुसुम-युत सिंचित हुई ॥२॥

(आकाश की ओर देखकर) क्या आप लोग यह कहते हैं कि—
'ये हम जल्दी कर रहे हैं ?' भले आदमियो । जल्दी करो, ये महाराज
चंद्रगुप्त आ पहुँचे ।

विषम पथों में भी स्थिर बल-युत गुरु ने इनके जो गुरु-भार
धारा विश्वासी अगों से, उसको ढोने को तैयार
हुए खूब नव यौवन वाले उत्साही अति धैर्य निधान
होते पथ-च्युत बाल-भाव से, खिन्न न होते कभी सुजान ॥३॥

(नेपथ्य में)

इधर को, इधर को महाराज !

(राजा तथा प्रतिहारी का प्रवेश)

राजा— (स्वगत) ऐसा राज्य सचमुच दुःखदायी होता है, जिसमें राज धर्म के पालन करने में राजा परतंत्र हो । क्योंकि—

अन्य-कार्य में निरत भूप का करती स्वतंत्रता है त्याग,
है वह झूठा नरपति सचमुच, अन्य-कार्य से जिसे विराग ।
अन्य-कार्य यदि आत्म-कार्य से अभिमत, हा ! स्वातंत्र्य-विहीन,
सुख-अनुभव कर सकता कैसे, है जो जग में अन्य-अधीन ? ॥४॥

और वशी राजा लोग भी इस राज-लक्ष्मी को बड़ी कठिनता से सँभाल सकते हैं । क्योंकि—

वसती प्रथम मनुज को, मृदु में परिभव-भय से है स्थिति-हीन,
मन्द न इष्ट इसे, अति पवित्र-जन में भी अनुराग-विहीन।
शूरों से भी अति भय खाती, हँसती भीरु पुरुष पर्यंत,
अवसर-युत-वेश्या-सम लक्ष्मी दुख से आश्रयणीय नितांत ॥५॥

और आर्य की आज्ञा है कि कृत्रिम कलह करके मुझे कुछ समय के लिए स्वतंत्र रूप से प्रत्येक कार्य करना चाहिए। और मैंने उसे पाप सा समझकर किसी प्रकार मान भी लिया है। अथवा आर्य का उपदेश हमें निरंतर मार्ग दिखाता रहता है इसलिए हम सदा ही स्वतंत्र हैं। क्योंकि—

शुभकार्य में रत शिष्य को गुरु रोकता जग में नहीं,
अज्ञानवश पथ-भ्रष्ट को वह रोक देता है वहीं
उपदेश इच्छुक सुमन अंकुश रहित होते इसलिए,
इससे अधिक जग में नहीं स्वातंत्र्य हमको चाहिए ॥६॥

(प्रकट) कंचुकी! सुगांग प्रासाद का मार्ग दिखाओ।

कंचुकी—इधर से इधर को महाराज।

राजा— चलता है)

कंचुकी—(घूमकर) यह सुगांग प्रासाद है महाराज धीरे-धीरे ऊपर चढ़ चलें।

राजा—(नाट्यपूर्वक ऊपर चढ़कर, दिशाओं की ओर देखकर) अहा! शरद ऋतु की निराली छवि से दिशाएँ कैसी सुंदर हो रही हैं।

| वनी दिशाएँ सरिता रूप ।

पुलिन जहाँ पर सित घन-खड,
निर्मलता का राज्य अखड,
सारस-कुल कल-गान अनूप ।
वनी दिशाएँ सरिता-रूप ॥

खिले हुए नक्षत्र, कुमुद हैं,
निशि में चित्र विचित्र स-मुद हैं,
नभ से उतरीं विमल-स्वरूप ।
वनी दिशाएँ सरिता रूप ॥७॥

* * *

शरद मे शिक्षित-सा ससार ।

वढे जल, कर मर्यादा भग,
उछलती चलतीं उग्र तरग,
सिखाया रहना निज आधार ।
शरद में शिक्षित-सा ससार ॥

सस्य लदे जव फल के भार,
झुकाया उनको अहो! उदार,
हरा मोर मद विप-सम अपार ।
शरद में शिक्षित-सा ससार ॥८॥

* * *

शरद का देखो नृत्य ललाम ।

सरस-कथा-कुशल दूति-समान,
कलुपित प्रथम फिर क्षीण महान

बहु-भ्रम-पति-पथ पर अजान,
उतार कथंचित् कर गर्विमान,
ले जाती प्रसन्न गंगा को,
तरंगित सागर-पति के धाम
शरद का देखो कृत्य ललाम ॥५॥

(अभिनयपूर्वक चारों ओर देखकर) कंचुकी! क्यों, नगर में कौमुदी-महोत्सव क्यों नहीं हो रहा है!

कंचुकी—महाराज! यह ठीक है। मैंने महाराज की आज्ञा से कुसुमपुर में कौमुदी-महोत्सव की घोषणा कर दी थी।

राजा—तो फिर क्या बात है नागरिक लोगों ने हमारी आज्ञा को क्यों नहीं माना?

कंचुकी—(दोनों कान ढककर) शिव! शिव! ऐसा न कहिए, महाराज! पृथ्वी भर में आपकी आज्ञा पहले कभी भंग नहीं हुई फिर नागरिक लोग कैसे ऐसा कर सकते हैं!

राजा—कंचुकी! तब किसलिए मैं कुसुमपुर को अब भी चंद्रिकोत्सव से वंचित देख रहा हूँ! देखो—

कहीं न कुछ भी चहल-पहल।
धूर्त, चतुर बातों में सुनिपुण
चलें पूर्ण-जन जिनके संग
वेश्याओं का शून्य गली में
भरि पृथु-तम मंथर-गति भंग
लगत पड़ती यह सारी नगरी

आज मुझे हा ! शात अचल ।
कहीं न कुछ भी चहल-पहल ॥

कर होड परस्पर वैभव से,
पुर-जन शका हीन हुए,
आत्म प्रिया जन-संग न डोलें,
सरस-कथा में लीन हुए ।

पर्व महोत्सव विषयक उनकी,
मनोकामना सब निष्फल ।
कहीं न कुछ भी चहल-पहल ॥१०॥

कचुकी—महाराज ! यही बात है ।

राजा—सो क्या ?

कचुकी—महाराज । यह बात यों है

राजा—कचुकी ! सारी बात स्पष्ट कहो ।

कचुकी—महाराज ! चद्रिकोत्सव बद कर दिया है ।

राजा—(क्रोधपूर्वक) आ ! किसने ?

कचुकी—इससे आगे मैं महाराज को कहने में असमर्थ हूँ ।

राजा—कदाचित् आर्य चाणक्य ने तो दर्शकों को अत्यत दर्शनीय वस्तु के दर्शन से वञ्चित नहीं किया ?

कचुकी—महाराज । और कौन, जिसे अपने प्राण प्यारे हैं, महाराज की आज्ञा का उल्लघन करेगा ?

राजा—शोणोत्तरा ! मैं बैठना चाहता हूँ ।

प्रतिहारी—महाराज ! यह सिंहासन है इस पर विराजिए।

राजा—(अभिनयपूर्वक देखकर) कंचुकी ! मैं आर्य चाणक्य से मिलना चाहता हूँ।

कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान)

(अपने घर में आसन पर विराजमान क्रोध-युक्त चिन्ता का अभिनय करते हुए चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य—(स्वगत) क्यों दुरात्मा राक्षस मेरी होड़ करता है। क्योंकि—

। त्याग नगर चाणक्य ने, अहि-सम पा पद-स्पर्श
मार नन्द क्यों मौर्य को किया नरेश स-हर्ष,
मौर्य-चन्द्र श्री का तथा करता मैं अपहार !
यह मम पर मम बुद्धि-बल खींचने को तैयार॥ ११॥

(आकाश की ओर इस प्रकार लक्ष्मी बाँधकर मानों राक्षस सामने दीख पड़ा हो) राक्षस ! राक्षस ! रहने दो—इस दुष्कर्म को।

मानो इन सचिवों ने मिलकर राज्य-तन्त्र देखा भाला,
चन्द्रगुप्त यह मौर्य अहो ! वह नन्द नहीं है मतवाला
तुम भी तो चाणक्य नहीं हो केवल इतनी मिलती बात—
इस दोनों के मधुर बैर का बढ़ता है बस तुल्य प्रपात ॥१२॥

(सोचकर) अथवा मुझे इस विषय में मन को अधिक दुखी नहीं करना चाहिए। क्योंकि—

पुरुषों में मम मलयकेतु को गुप्त घेरा घर किया अधीन,
सिद्धार्थादिक दूत सभी वे आज्ञा-पालन में हैं लीन।

मौर्य-चद्र के सग कलह मैं रचकर सचमुच अब छल से,
भेद-कुशल रिपु, राक्षस को द्रुत पृथक् करूँगा मति-चल से ॥१३॥

(कचुकी का प्रवेश)

कचुकी—सेवा सचमुच बड़ी दु:खदायिनी होती है। क्योंकि—

नृप, मत्री, नृप-प्रिय-जन अथवा अन्य धूर्त जो करते वास
राज-भवन में, दया-पात्र बन, होता अहो। सभी से त्रास,
सन्मुख लखते, दीन बोलते, उदर-अर्थ दुख सहते हैं,
मान-हारिणी सेवा को बुध शुनक-वृत्ति सच कहते हैं ॥१४॥

(घूमकर और देखकर) अब मैं आर्य चाणक्य की कुटी में चलूँ। (अभिनयपूर्वक भीतर जाकर और देखकर) अहो! राजाधिराज के मत्री के घर की ऐसी निराली छटा। क्योंकि—

रखा हुआ पाषाण-खड यह गोमय-भजन,
बिछी हुई यह दाभ, जिसे हैं लाए वटु-गण,
यह घर पड़ता देख, सूखतीं समिधा जिस पर,
जीर्ण-शीर्ण है भीत, झुका अति जिसका छप्पर ॥१५॥

इसलिए इनका महाराज चद्रगुप्त को 'वृषल' कहकर पुकारना ठीक ही है क्योंकि—

जो सत्यवादी भी सुजन, कहकर वचन अति रस-पगे,
हो दीन, नृप-स्तुति-निरत नित मिथ्या-प्रशसा में लगे,
है लोभ का ही खेल, यह सारा जगत में, अन्यथा
धन-लोभ-हीन मनुष्य नृप को हैं समझते, तृण यथा ॥१६॥

(देखकर डर से) ये आर्य चाणक्य बैठे हैं—

सकल लोक का कर जो परिमित एक साथ ही लेत निधान,
अस्त-उदय नृप नन्द-मौर्य का सहसा करते जिस महान
अखिल-लोक-व्यापक जो क्रम से हिम-उष्णता-सृष्टि रचते
निज छवि से उन किरण धाम की शोभा को हैं ये हरते ॥१६॥

(भूमि पर घुटने टेककर) जय हो, जय हो आर्य की।

चाणक्य—(अभिनयपूर्वक देखकर) कंचुकी ! तुम क्यों आए हो ?

कंचुकी—आर्य ! प्रणाम के समय जल्दी करने के कारण हिलते हुए राजाओं के मुकुटों में जड़े हुए मणि-खंडों की कान्ति से जिनके चरण कमल लाल बने रहते हैं वे सार्वभौम महाराज चंद्रगुप्त भूमि पर माथा टेककर आर्य को सूचित करते हैं कि—यदि आर्य के किसी कार्य में बाधा न पड़े तो मैं आर्य के दर्शन किया चाहता हूँ।

चाणक्य—वृषल मुझसे मिलना चाहता है ? कंचुकी ! क्या उसने भी यह नहीं सुना कि मैंने कौमुदी महोत्सव बंद कर दिया है ?

कंचुकी—क्यों नहीं आर्य !

चाणक्य—(क्रोधपूर्वक) हां ! किसने कहा ?

कंचुकी—(भय का अभिनय करके) रक्षा करें आर्य; महाराज ने स्वयं ही सुगांग प्रासाद के ऊपर से देख लिया कि कुसुमपुर में चंद्रिकोत्सव नहीं मनाया जा रहा है।

चाणक्य—आः ! मैं समझ गया तुम्हीं लोगों ने मेरी अनुपस्थिति में वृषल को उत्तेजित कर नाराज कर दिया है। और क्या बात है ?

कंचुकी—(भयभीत हुआ चुपचाप मुँह नीचा किए खड़ा रहता है)

चाणक्य—आश्चर्य है, राजा के अनुचरों का चाणक्य के प्रति कितना द्वेष भाव है ? अच्छा तो कहाँ है वृषल ?

कंचुकी—(भय का अभिनय करता हुआ) आर्य ! महाराज सुगांग प्रासाद की अटारी में हैं, वहीं से उन्होंने मुझे श्रीचरणों में भेजा है।

चाणक्य—(उठकर) कंचुकी ! सुगांग प्रासाद का मार्ग दिखाओ।

कंचुकी—इधर को। इधर को, आर्य।

(दोनों चलते हैं)

कंचुकी—यह सुगांग प्रासाद है, आर्य धीरे से ऊपर जा सकते हैं।

चाणक्य—(अभिनयपूर्वक चढ़कर और देखकर हर्षपूर्वक स्वगत) अहो ! वृषल सिंहासन पर विराजमान है ? वाह ! वाह !—

जो धनद-निरपेक्ष नदों ने तजा,
वह सिँहासन मौर्य से नृपवर सजा;
तुल्य नृप-गण से तथा यह है घिरा,
कार्य ये करते सुखी मुझको निरा ॥१८॥

(समीप जाकर) जय हो वृषल की।

राजा—(सिंहासन से उठकर, चाणक्य के चरण छूकर) आर्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य—(दोनों हाथ पकड़कर) उठो, उठो, वत्स !

पत्थर पर बिखरी गंगा की जल-कण-वर्षा से शीतल,
हिम-पर्वत से मणि-गण-मंडित दक्षिण जलनिधि तक अविरल

आ-आकर नत-मस्तक भूप-गण तव पद-युग पर शीश धरें,
और मुकुट-मणि-किरणों से पद रन्ध्रों को भरपूर करें ॥१४॥

राजा—आप की दया से मैं इसका अनुभव कर ही रहा हूँ इसमें मुझे इच्छा नहीं। बैठें आर्य।

(दोनों यथास्थान बैठ जाते हैं)

चाणक्य—वत्स! हमें किसलिए बुलाया है?

राजा—आर्य के दर्शन से निज को अनुगृहीत करने के लिए।

चाणक्य—(मुस्कराकर) वत्स! यह विनय रहने दो; राजा लोग अधिकारी-वर्ग को निष्प्रयोजन नहीं बुलाया करते; इसलिए प्रयोजन बतलाइए।

राजा—आर्य! कौमुदी-उत्सव के प्रतिषेध का आपने क्या फल सोचा है?

चाणक्य—(मुस्कराकर) वत्स! तो क्या उलाहना देने के लिए तुमने हमें बुलाया है?

राजा—आर्य! उलाहना देने के लिए नहीं।

चाणक्य—फिर किसलिए?

राजा—निवेदन करने के लिए।

चाणक्य—वत्स! यदि यह बात है तो शिष्य को चाहिए कि वह अवश्य गुरु की इच्छा के पीछे चले।

राजा—आर्य! इसमें क्या सन्देह है? किन्तु आर्य का कोई कार्य कभी भी निष्प्रयोजन नहीं होता इसलिए हमें प्रश्न का अवसर मिल गया है।

चाणक्य–वृषल ! तुमने मेरे आशय को ठीक समझा। क्योंकि चाणक्य स्वप्न में भी अकारण कोई काम नहीं करता।

राजा–आर्य ! इसीलिए मुझे कारण सुनने की इच्छा वाचाल बना रही है।

चाणक्य–वृषल ! सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार की सिद्धि का वर्णन किया है—राजाधीन, सचिवाधीन और राज-सचिवाधीन इसलिए सचिवाधीन सिद्धि का प्रयोजन ढूंढ़ने से तुम्हें क्या ? क्योंकि वह तो हमारे ही अधीन है, हम जान लेंगे।

राजा—(क्रुद्ध-सा होकर मुंह मोड़ लेता है)

(नेपथ्य में दो वैतालिक स्तुति गान करते हैं)

पहला—

जो नभ-परिभवकारि-भस्म से
काश-कुसुम-छवि को हरती,
जलधर-श्यामल हस्ति-चर्म को
शशि की किरणों से भरती,
चन्द्र-चन्द्रिका-सम अति निर्मल
धारण करती शिर-माला,
हास-हंस-युत शिव-तनु-सम यह
शरद हरे सब दुख-ज्वाला ॥ १९ ॥

और—

फण-मंडल उपधान जहाँ, यह
भुजग-अंकमय शयन महान
तजते ही खुलने से सालस
सहती क्षण मणि-दीप-प्रभा न,

कचुकी—जो महाराज की आज्ञा ।

(उठकर चलने लगता है)

चाणक्य—(क्रोधपूर्वक) कंचुकी ! ठहरो, ठहरो, मत जाओ । वृषल ! क्यों यह अपात्र को इतना धन दे रहे हो ?

राजा—आर्य ही मुझे सब कामो मे रोकने वाले हो गए, यह मेरा राज्य क्या, मानो बधन है ।

चाणक्य—वृषल ! जो राजा अपना राज्य-भार स्वय नहीं सँभालते, उनमें यही तो कमी होती है। तो यदि तुम यह नहीं सह सकदे, तो अपना काम अपने आप सँभालो ।

राजा—हाँ, हम अपना काम स्वयं सँभाले लेते हैं ।

चाणक्य—हम प्रसन्न है, हम भी अपना काम सँभाले लेते हैं ।

राजा—यदि यह बात है, तो मैं कौमुदी-महोत्सव के निषेध का कारण सुना चाहता हूँ ।

चाणक्य—वृषल ! मै भी यह सुना चाहता हूँ कि चन्द्रिकोत्सव मनाने का क्या प्रयोजन है ।

राजा—पहला प्रयोजन तो मेरी आज्ञा का पालन ही है ।

चाणक्य—वृषल ! मेरे भी चन्द्रिकोत्सव के निषेध करने का पहला कारण तो तुम्हारी आज्ञा का भंग करना ही है । क्योंकि—

१ तमाल-किसलय-श्यामल जिनके
वेला-वन अति शोभित हैं,
चचल-मछली-कुल से जिनके
अतर्जल अति क्षोभित है,
उन्हीं चार समुद्र-तटों से आ नत
नृप-गण ने आज्ञा धारी,

लीन रहते थे और हाथी, घोड़ों की देख भाल में प्रमाद करते थे, इस लिए मैंने उनसे अधिकार छीनकर केवल जीवन-निर्वाह के लिए आजीविका नियत कर दी थी, इसलिए ये दोनो विरक्त होकर मलयकेतु के पास जाकर अपने-अपने पद पर नियुक्त हो गए। जो ये हिंगुरात और बलगुप्त है, इन दोनों का भी स्वभाव बड़ा लोभी था, दिए धन को कुछ समझते ही न थे, इन दोनो ने सोचा कि सभव है, वहाँ जाकर बहुत मिले, इसलिए दोनो मलयकेतु की शरण में चले गए। वह भी जो आपका बचपन का सेवक राजसेन है, वह भी आपके प्रसाद से बहुत अधिक धन, हाथी, घोड़े एक साथ बड़ी भारी धन-सपत्ति पाकर, फिर छिन जाने के भय से मलयकेतु के आश्रय में चला गया। जो यह सेनापति सिंहबल का छोटा भाई भागुरायण है, उसने भी उस समय पर्वतक के साथ मित्रता हो जाने के कारण उसके प्रति प्रेम होजाने से 'तुम्हारे पिता को चाणक्य ने मार डाला है' यह कहकर मलयकेतु को एकात में भयभीत करके भगा दिया था। उसके बाद जब आपके विरोधी चंदनदास आर्य को दड दिया गया, तो वह अपने अपराध से आशकित हो भागकर मलयकेतु के समीप चला गया। उसने भी उसे अपना प्राण रक्षक समझ कर कृतज्ञता प्रकट करने के लिए अपने सन्निकट मत्री-पद पर नियुक्त कर दिया। जो वे रोहिताक्ष और विजयवर्मा हैं, वे भी महा अभिमानी होने के कारण आपके द्वारा निज बंधुओ को दिए गए धनादिक को न सहकर मलयकेतु के पास चले गए। ये इन लोगों के विराग के कारण है।

राजा—आर्य! जब आप इस प्रकार के इन विराग के कारणो को जानते थे, तो आर्य ने क्यो शीघ्र ही प्रतिकार नही किया ?

चाणक्य—वृषल! प्रतिकार कर नही सके।

राजा—क्या असमर्थ होने से अथवा कुछ प्रयोजन से। कारण ?

चाणक्य—असमर्थ कैसे हो सकते हैं ? कुछ प्रयोजन है न।

राजा—तो मैं प्रतिकार न करने का प्रयोजन भी सुना चाहता।

चाणक्य—वृषल ! सुनो और ध्यान दो।

राजा—दोनों ही बातें करूँगा कहिए।

चाणक्य—संसार में विरक्त प्रजा के दो उपाय हैं—एक अनुग्रह और दूसरा निग्रह। अनुग्रह यह है कि भद्रभट और पुरुदत्त इन दोनों का जो अधिकार छीन लिया है उन्हें फिर वह अधिकार सौंप दिया जाय। किंतु व्यसनी होने के कारण उनके योग्य नहीं। फिर भी यदि उन्हें अधिकार दे दिया जाय तो सम्पूर्ण राज्य की जड़ हाथी और घोड़े नष्ट हो जायँ। हिंगुरात और बलगुप्त इतने लोभी हैं कि यदि उन्हें सम्पूर्ण राज्य भी प्रदान कर दिया जाय तो भी संतुष्ट न हों इसलिए उन पर अनुग्रह कैसे किया जा सकता है ? राजसेन और भागुरायण भी धन छिन जाने के भय से भागे हैं, उनके लिए भी कैसे अनुग्रह का अवसर हो सकता है ? और रोहिताक्ष तथा विजयवर्मा भी बड़ा अभिमानी हैं वे आपके बंधु-सम्मान को भी नहीं सह सकते उन्हें किस प्रकार का अनुग्रह प्रसन्न कर सकेगा ? इसलिए अनुग्रह तो किया नहीं जा सकता। निग्रह भी इसलिए नहीं किया जा सकता कि हमने अभी ही नन्द-राज्य को प्राप्त किया है यदि हम अब के सहायक प्रधान कर्मचारियों को कठोर दण्ड देकर सताना आरम्भ करें, तो नन्द-कुल के प्रेमी प्रजा-जनों का विश्वास हम पर से सदा के लिए उठ जायगा। तो इस प्रकार हमारे अनुचरों को अनुग्रह पूर्वक अपनी ओर मिलाकर राक्षस का उपदेश सुनने में लीन हुआ महान

यवन-सेना से घिरा हुआ और पिता के वध से क्रुद्ध हुआ पर्वतक का पुत्र मलयकेतु हम पर आक्रमण किया ही चाहता है, इसलिए यह उद्योग का समय है उत्सव का नहीं। इसलिए जबकि हमें दुर्ग-संस्कार आरंभ करना चाहिए, तब चन्द्रिकोत्सव से क्या प्रयोजन ? इसीलिए मैंने उसका निषेध किया था।

राजा—आर्य ! मुझे इस विषय में बहुत पूछना है।

चाणक्य—वृषल ! नि:शंक होकर पूछो, मुझे भी इस विषय में बहुत कहना है।

राजा—मैं यह पूछता हूँ।

चाणक्य—मैं भी यह कहता हूँ।

राजा—जो यह हमारे संपूर्ण क्लेशों का कारण मलयकेतु है, उसको क्यों आर्य ने भागते समय छोड़ दिया ?

चाणक्य—वृषल ! मलयकेतु के भागते समय उपेक्षा न करने की अवस्था में दो ही उपाय थे—या तो उस पर अनुग्रह करते या उसे दंड देते। अनुग्रह करने की अवस्था में पहले प्रतिज्ञा किया हुआ आधा राज्य देना पड़ता, और दंड देने की दशा में 'पर्वतक को हमने मारा है' यह हम स्वयं अपनी कृतघ्नता प्रकट कर देते। और यदि हम वायदा किया हुआ आधा राज्य दे भी दें, तो पर्वतक के वध का एक मात्र फल कृतघ्नता ही होवे, इसलिए मैंने भागते हुए मलयकेतु को नहीं पकड़ा।

राजा—इसका तो यह उत्तर हुआ। किंतु आर्य ने इसी नगर में रहते हुए राक्षस को छोड़ दिया, इस विषय में आर्य का क्या उत्तर है ?

चाणक्य—राक्षस भी, निज स्वामी का दृढ़ भक्त होने के कारण, और बहुत समय तक एक स्थान पर रहने के कारण उसके शील-स्वभाव

से परिचित और भक्त प्रजा का विश्वासपात्र बना हुआ है, बुद्धिमान और पुरुषार्थी है, उसके सहायक भी हैं और वह कोष-बल से भी युक्त है। ऐसी दशा में यदि वह यहीं—नगर में—रहे, तो बड़ी खलबली मचा दे। और यहाँ से अलग होकर चाहे वह बाहर गड़बड़ी भी पैदा कर दे, तो भी सहज ही वश में किया जा सकेगा। इसलिए जानते हुए उसे छोड़ दिया।

राजा—तो जब वह यहीं रहता था तभी क्यों न आर्य ने उसे वश में करने का कोई उपाय किया?

चाणक्य—वश में कैसे किया जा सकेगा? देखो, मैंने अनेक उपाय करके उसे हृदय में चुभी कील के समान उखाड़कर दूर पहुँचा दिया है। और मैं उसके दूर पहुँचा देने का कारण बता चुका हूँ।

राजा—आर्य! आक्रमण करके क्यों न पकड़ लिया?

चाणक्य—वृषल! वह राक्षस है। आक्रमण करके यदि उसे पकड़ने का यत्न किया जाता तो या तो वह स्वयं अपने प्राणों की बलि चढ़ा देता अथवा तुम्हारी सेनाओं का संहार कर डालता। ऐसा होने पर दोनों ही तरह हानि थी। देखो—

आक्रांत होकर सैन्य से हो प्राण वह गु-लीन हो;
उस विज्ञ पुरुष से हे वृषल! हो जायँगे हम हीन ही!
यदि मार दे वह सैन्य-नायक दुख कितना सोच लो,
वन-गज-सदृश उसको उपायों से अतः वश में करो ॥२४॥

राजा—मैं आर्य को बातों में तो नहीं जीत सकता, किंतु अमात्य राक्षस ही सर्वथा प्रशंसनीय जान पड़ते हैं।

चाणक्य—'न कि आप' इतना छोड़ दिया। ऐसा न कहो। हे वृषल! उसने क्या किया?

राजा—यदि मालूम नहीं है, तो सुनो । वह महापुरुष—

रख चरण गरदन पर हमारी राजधानी में रहा,
जय-घोष में मम सैन्य-गण का अति विरोध किया अहा !
नय-चातुरी से विपुल अति समोह में डाला हमें,
विश्वस्त जन में भी किया सदिग्ध-मन वाला हमें ॥२५॥

चाणक्य—(हँसकर) वृषल ! यह काम राक्षस ने किया !

राजा—और क्या, यह काम अमात्य राक्षस ने किया ।

चाणक्य—वृषल ! मैंने तो जाना कि आपको नद के समान राज्य-च्युत करके मलयकेतु को आपके तुल्य पृथिवी भर का राजा बना दिया !

राजा—उपालभ न दीजिए । आर्य ! भाग्य ने यह सब किया है, इसमें आर्य का क्या काम है ?

चाणक्य—अरे डाह के पुतले !

अग्रांगुली से क्रोध में अति निज शिखा को खोल के,
रिपु-ध्वस की भीषण प्रतिज्ञा के वचन स्फुट बोल के,
किस अन्य ने अति विभवशाली मान के पुतले तथा,
प्रत्यक्ष राक्षस के सभी वे नद मारे, पशु यथा ? ॥२६॥

और—

बाँध चक्र गगन में उड़ते
लबे निश्चल पर वाले,
गृद्ध्र-धूम से ढक रवि, दिखला
दिङ्मडल जलधर वाले,
श्मशान-वासी जीवों को दे
नंद-शवों से तोष्य नितात,

चाणक्य—(बनावटी क्रोध को रोककर) वृषल ! वृषल ! उत्तर पर उत्तर मत दो। यदि राक्षस को हमसे अधिक श्रेष्ठ समझते हो, तो यह शस्त्र उसे सौंप दो। (शस्त्र को छोडकर और उठकर आकाश में टकटकी बाँधकर स्वगत) राक्षस ! राक्षस ! तुम चाणक्य की बुद्धि की अवहेलना करना चाहते हो ! तुम्हारी बुद्धि की यही श्रेष्ठता है—

'स्नेह-रहित चाणक्य हुआ है जिसमें, सुख से
जीतूँगा वह मौर्य' हृदय धर यह, दुख से
तुमने भेद प्रयोग किया अब जो, वह सारा
धूर्त ! करेगा शीघ्र अमंगल सत्य तुम्हारा ॥३०॥

(चाणक्य का प्रस्थान)

राजा—कंचुकी ! प्रजा के लोगों से यह कहदो कि आज से चाणक्य को छोडकर चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य-कार्य किया करेगा।

कंचुकी—(स्वगत) क्यों ! बिना किसी पद को पहले जोडे केवल चाणक्य कहा है, न कि आर्य चाणक्य ! बुरा हुआ ! सचमुच ही पद-च्युत कर दिया ! अथवा इस बात में महाराज का कोई अपराध नहीं।

सचिव-दोष ही से करें, निंदनीय नृप काम।
यंतृ-दोष ही से सदा, कहलाता गज वाम ॥३१॥

राजा—आर्य ! क्या सोच रहे हो ?

कंचुकी—महाराज ! कुछ नहीं सोच रहा हूँ, किंतु मेरा यह निवेदन है कि महाराज अब महाराज होगए।

राजा—(स्वगत) जब संसार ने हमारी कलह को सत्य समझ लिया है, तब निज कार्य-सिद्धि के इच्छुक आर्य की इच्छा पूर्ण हो। (प्रकट) शोणोत्तरा ! इस सूखी कलह के कारण मेरे सिर में पीडा होरही है, इसलिए शयन-मंदिर का मार्ग बताओ।

चौथा अंक

(पथिक के वेश में पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—ओ हो हो ! ओ हो हो !

कौन योजन सैकड़ों दुख से महा,
विश्व में गमनागमन करता अहा!
है बुरा जिसका समुल्लघन अहो,
स्वामि-आज्ञा जो कहीं ऐसी न हो ॥ १ ॥

तो अमात्य राक्षस के ही घर में जाता हूँ । अरे ! यहाँ कोई द्वारपाल है ? स्वामी अमात्य राक्षस को सूचित कर दो कि—करनक काल-गज के तुल्य गति से कार्य समाप्त करके पटने से आ गया है ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—भद्र पुरुष ! जोर से न बोलो, स्वामी अमात्य राक्षस के सिर में कार्य चिंता के कारण जागने से पीड़ा हो रही है; उन्होंने अभी तक भी शय्या को नहीं छोड़ा है, इसलिए जरा थोड़ी देर ठहरो, जब तक कि मैं अवसर पाकर आपके आगमन से उन्हें सूचित कर दूँ ।

पुरुष—भद्रमुख ! जैसा चाहो, करो ।

(शय्या पर लेटे हुए चिंता-युक्त राक्षस का आसन पर बैठे हुए शकटदास के साथ प्रवेश)

राक्षस—(स्वगत)

सोचता 'विधि वश जगत' आरम्भ में,
अति कुटिल कौटिल्य-मति को सोचता,

निज निष्फल कार्य श्रम, अब क्या करूँ ?
यह सोचता निज रात भर हूँ जागता ॥ २ ॥

और—

आरम्भ कर कुछ पूर्व फिर विस्तार क्रम करता हुआ।
फिर बीज-फल को गूढ़ दुर्गम स्पष्ट-सा करता हुआ,
अति सोचता रचता विरल भी कार्य के निर्वाह को।
हूँ भोगता दुख-सा अनुज था नाट्य-कर्ता क्लेश को ॥ ३ ॥

क्या फिर भी वह दुरात्मा कुट-बुद्धि चाणक्य—

द्वारपाल—(समीप पहुँच कर) जय हो जय हो।

राक्षस— ठगा जा सकता है ?

द्वारपाल—अमात्य !

राक्षस—(बाईं आँख का फड़कना प्रकट करके स्वगत) दुरात्मा कुट-बुद्धि चाणक्य की जय हो ठगा जा सकता है अमात्य यद्यपि बाईं आँख के फड़कने से यही प्राकरणिक अर्थ सूचित होता है फिर भी उत्साह नहीं छोड़ना चाहिए (प्रकट) भद्र ! तुम क्या कहना चाहते हो ?

द्वारपाल—मंत्री जी ! ये करभक पटने से आए हैं मंत्री जी से मिलना चाहते हैं।

राक्षस—शीघ्र ही रोक-टोक बिना लाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा।

(बाहर जाकर पुरुष के साथ पुनः प्रवेश)

द्वारपाल—भद्र पुरुष ! ये मंत्री जी बैठे हैं पास चले जाओ।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

करभक—(राक्षस के पास जाकर) जय हो मंत्री जी की।

राक्षस—(अभिनय पूर्वक देखकर) भद्र करभक ! स्वागत है, बैठो।

करभक—जो आज्ञा।

(भूमि पर बैठ जाता है)

राक्षस—(स्वगत) अनेक कार्य होने के कारण मुझे याद नहीं आ रहा कि मैंने इस दूत को किस कार्य के लिए भेजा था।

(चिंता का अभिनय करता है)

(बेंत हाथ में लिए दूसरे पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—हटो, सज्जनो ! हटो, दूर हो, भले आदमियो ! दूर हो। क्या नहीं देखते ?—

पुरुषों में सुर-सम, अमर मंगल-कुल-भरपूर।—
दर्शन भी इनका कठिन, निकट-प्राप्ति अति दूर॥ ४॥

(आकाश की ओर देखकर) सज्जनो ! क्या कहते हो—'यह क्यों हटाया जा रहा है ?' सज्जनो ! ये कुमार मलयकेतु, अमात्य राक्षस की सिर-पीड़ा का समाचार सुन कर, उन्हें देखने के लिए यहीं पर आ रहे हैं। इसलिए हटाया जा रहा है।

(पुरुष का प्रस्थान)

(भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु का प्रवेश)

मलयकेतु—(लंबी सांस लेकर स्वगत) आज पिता जी को मरे, दस मास बीत गए। और व्यर्थ के पुरुषत्वाभिमानी हमने उनके निमित्त जलांजलि तक भी नहीं दी। अथवा मैं पहले यह प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि—

वक्ष-घात से वलय-रत्न हैं भिन्न, वसन से हीन हुई,
करतीं करुण-विलाप वेग से, अलकें रेणु-मलीन हुईं,

भट आदि ने कहा कि—'हम राक्षस के कहने से सेवनीय कुमार की सेवा में नहीं रहते, किंतु हम, कुमार के सेनापति शिखरसेन के कहने से, नीच मंत्री के चंगुल में फँसे हुए चंद्रगुप्त से विरक्त होकर, सुंदर गुण संपन्न एवं सेवनीय कुमार की सेवा में जीवन व्यतीत करते हैं।' उनकी इस बात पर मैंने बहुत समय तक विचार किया, पर मैं इसका अभिप्राय न समझ सका।

भागुरायण—कुँवर जी! इसका अर्थ अधिक कठिन नहीं है। देखो यदि कोई पुरुष प्रिय एवं हितकारी पुरुष के द्वारा वीर, उत्साही तथा आश्रय योग्य राजा का आश्रय ग्रहण करता है, तो यह उचित ही है।

मलयकेतु—मित्र! भागुरायण! तो फिर अमात्य राक्षस तो हमारे अत्यंत प्रिय एवं हितकारी हैं।

भागुरायण—कुँवर जी! यह ठीक है, किंतु अमात्य राक्षस की शत्रुता चाणक्य के साथ है, चंद्रगुप्त के साथ नहीं, तो यदि कदाचित् चंद्रगुप्त महाघमंडी चाणक्य की बात को सहकर उसे मंत्री-पद से च्युत कर दे, उस दशा में अमात्य राक्षस नंद-कुल को भक्त होने के कारण चंद्रगुप्त को नंदवंशीय समझकर और मित्रों की प्राण-रक्षा का ख्याल करके चंद्रगुप्त के साथ सुलह कर ले, और चंद्रगुप्त भी उसे अपना कुल-मंत्री समझकर संधि को मान ले, ऐसा होने पर कुमार, संभव है, हम पर भी भरोसा न करें। यह इन लोगों की बात का अभिप्राय है।

मलयकेतु—हो सकता है। मित्र! भागुरायण! अमात्य राक्षस के घर का मार्ग बताओ।

भागुरायण—इधर को, इधर को, कुँवरजी!

(दोनों चलते हैं)

भागुरायण—कुँवरजी ! यह अमात्य राक्षस का घर है, कुँवरजी भीतर जा सकते हैं।

मलयकेतु—यह मैं भीतर चलता हूँ।

(दोनों भीतर जाने का अभिनय करते हैं)

राक्षस—(स्वगत) आः ! याद आया ! (प्रकट) भद्र पुरुष ! क्या तुम कुसुमपुर में वैतालिक स्तनकलश से मिले थे ?

करभक—मंत्रीजी ! क्यों नहीं ?

मलयकेतु—मित्र ! भागुरायण ! कुसुमपुर का वृत्तांत आरम्भ हो रहा है। इसलिए पास नहीं जाते, जरा सुनें तो क्योंकि—

मंत्र भंग भय से सचिव कहते मन से और।
बात-चीत में और से प्रकटित करते और ॥ ५ ॥

भागुरायण—जो कुँवरजी की आज्ञा।

राक्षस—भद्र पुरुष ! क्या वह काम पूरा हो गया ?

करभक—अमात्य की कृपा से पूरा हो गया।

मलयकेतु—मित्र ! भागुरायण ! वह कौन-सा काम ?

भागुरायण—कुँवर जी ! मंत्री जी की बातें बड़ी कठिन होती हैं, उन्हें इतनी जल्दी नहीं समझा जा सकता। जरा सावधान होकर सुनो।

राक्षस—भद्र पुरुष ! मैं विस्तार से सुना चाहता हूँ।

करभक—सुनें मंत्री जी। मुझे मंत्री जी ने यह आज्ञा दी थी कि—'करभक ! तुम कुसुमपुर जाकर वैतालिक स्तनकलश से मेरी ओर से कहना कि दुष्ट चाणक्य जब कभी आज्ञा-भंग करे, तभी तुम उत्तेजना त्मक स्तुति गान से चन्द्रगुप्त की स्तुति करना।

राक्षस—इसके बाद ?

करभक—तब मैंने पाटलिपुत्र जाकर स्तनकलश से अमात्य का संदेश कह सुनाया।

राक्षस—तब, फिर ?

करभक—इसी समय चंद्रगुप्त ने नंद-कुल के विनाश से दुखी-मन पुरवासियों के लिए मनोप्रदायक चंद्रिकोत्सव की घोषणा करवा दी। और उसके चिरकाल तक होते रहने के कारण पुरवासी बड़े संतुष्ट हुए और उन्होंने उसका अभिमत-बंधु मिलाप के समान, स-प्रेम अभिनंदन किया।

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) हाय ! महाराज ! नंद !

होने पर भी चंद्र के कुमुद-हर्ष, नृप-चंद !
तुम-बिन कैसी 'चंद्रिका' निखिल-लोक-आनंद ! ॥९॥

भद्र पुरुष ! उसके बाद ?

करभक—मंत्रीजी ! फिर वह—संसार की आँखों को लुब्ध करने वाला—कौमुदी महोत्सव नागरिक लोगों की इच्छा का कुछ भी ख्याल न करके दुष्ट चाणक्य ने बंद करवा दिया। इसी समय स्तनकलश ने उत्तेजनात्मक स्तुति गान से चंद्रगुप्त की स्तुति करनी आरंभ कर दी।

राक्षस—सो कैसी ?

करभक—('नरवर ! मानो मतिबल के निधि 'इत्यादि पूर्वोक्त पढ़ता है)

राक्षस—(प्रसन्न होकर) वाह ! मित्र स्तनकलश ! वाह ! तुमने समय पर भेद-बीज जो दिया, वह अवश्य ही फल दिखाएगा। क्योंकि—

साधारण जन भी नहीं, सह सकता रस-भंग।
दिव्य-तेज-धारी सहे, कैसे भूप-मतंग ? ॥१०॥

भागुरायण—कुँवरजी ! इस बात का समझना अधिक कठिन नहीं ज्यों-ज्यों कुछ चाणक्य और चन्द्रगुप्त की आपस में बिगड़ती है त्यों-त्यों इसका स्वार्थ सिद्ध होता है ।

शकटदास—मन्त्री जी ! अब अधिक तर्क-वितर्क न कीजिए यह बात ठीक ही है क्योंकि देखिए—

रक्खा जिसने सिर-मणि-प्रति-द्युति-
संयुत नरपति-प्राण चरण
सह सकता है मौर्य कहीं वह
मित्र-जन-कृत आज्ञा-भंजन ?
क्रोधी भी चाणक्य नहीं ! वह,
अनुभव करके अतिशय क्षोभ
विधि-वश पूर्ण-प्रतिज्ञ न करता,
फिर जय-भीत प्रतिज्ञा-लोभ ॥ ११ ॥

राक्षस—मित्र ! शकटदास ! यह ठीक है तो जाओ करभक को आराम से ठहराओ ।

शकटदास—जो मन्त्रीजी की आज्ञा ।

(करभक के साथ प्रस्थान)

राक्षस—मैं भी कुमार से मिलना चाहता हूँ ।

मलयकेतु—मैं स्वयं ही आर्य से मिलने आया हूँ ।

राक्षस—(अभिनय पूर्वक देखकर) ऐं ! कुमार स्वयं आए हैं ! (आसन से उठकर) यह आसन है कुमार बैठ सकते हैं ।

मलयकेतु—मैं बैठे जाता हूँ आर्य भी विराजें ।

(दोनों यथास्थान बैठ जाते हैं)

मलयकेतु—आर्य ! सिर की पीड़ा कुछ कम हुई कि नहीं ?

राक्षस—जब तक कि कुमार को कुमार के स्थान में 'महाराज !' कहकर नहीं पुकारा जाता, तब तक सिर की पीडा कैसे कम पड़ सकती है ?

मलयकेतु—जब आर्य ने स्वय मन में एमा ठान रखा है, तब कुछ कठिनता न होगी। तो कब तक हम लोग, इस प्रकार सेनाओं से सुसज्जित होने पर भी, शत्रु के विपत्काल की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहेंगे ?

राक्षस—कुँवर जी ! अब व्यर्थ समय खोने का अवकाश कहाँ है ? रिपु-विजय के लिए कूच करो।

मलयकेतु—मंत्री जी ! क्या आपको शत्रु की विपत्ति के विषय में कुछ समाचार मिला है ?

राक्षस—जी हाँ, मिला है।

मलयकेतु—कैसा ?

राक्षस—मंत्री-संकट, और क्या ? चद्रगुप्त चाणक्य से पृथक् हो गया है।

मलयकेतु—मंत्री जी ! बस, केवल मत्री-सकट ही ?

राक्षस—कुँवर जी ! अन्य राजाओं के लिए कदाचित् मत्री-संकट असकट भी हो जाय, किंतु चंद्रगुप्त के लिए नहीं।

मलयकेतु—आर्य ! मेरी समझ में तो चद्रगुप्त के लिए विशेष रूप से यह बात है।

राक्षस—क्या कारण है, जो चद्रगुप्त के लिए मंत्री-सकट सकट नहीं है ?

मलयकेतु—चंद्रगुप्त की प्रजा के विराग का कारण एकमात्र चाणक्य दोष है। उसके दूर होते ही, जो लोग चद्रगुप्त के पहले से ही अनुरागी है, अब फिर उसके प्रति प्रेम-प्रदर्शन करने लगेंगे।

राक्षस—कुँवर जी ! यह बात नहीं। यहाँ दो प्रकार के पुरुष हैं एक चन्द्रगुप्त का साथ देने वाले दूसरे नन्द-कुल में अनुराग रखने वाले। उनमें चन्द्रगुप्त का साथ देने वाले पुरुषों के लिए एकमात्र चाणक्य के दोष ही विराग के कारण हैं न कि नन्द-कुल के स्वजन-भक्तों के लिए। वे तो क्योंकि इस कृतघ्न ने पितृ कुल-तुल्य समस्त नन्द-वंश का नाश कर दिया इसलिए विराग और क्रोध से अभिभूत हुए, अपना कोई सहारा न पाकर चन्द्रगुप्त का ही अनुगमन करते हैं। किन्तु शत्रु को नष्ट करने की निश्चित शक्ति वाले आप सरीखे राजा को प्राप्त करके चन्द्रगुप्त को छोड़कर, आप ही की शरण आ जायेंगे। इस विषय में कुँवर जी के लिए हम ही दृष्टान्त हैं।

मलयकेतु—मन्त्रीजी ! क्या एकमात्र मन्त्री-अपमान ही चन्द्रगुप्त के पराजय का कारण हो सकता है या कुछ और भी ?

राक्षस—कुँवरजी ! अन्य बातों से भी क्या ?—यही उनमें सबसे बड़ा कारण है।

मलयकेतु—कुँवरजी ! कैसे सबसे बड़ा हो सकता है ? क्या चन्द्रगुप्त अपने राज्य के कार्य-भार को किसी अन्य मन्त्री को सौंपकर या स्वयं सँभाल कर उसका प्रतिकार नहीं कर सकता ?

राक्षस—जी हाँ नहीं कर सकता है।

मलयकेतु—क्यों ?

राक्षस—क्योंकि जो राजा लोग स्वयं अपना कार्य-भार सँभालते हैं अथवा जो मन्त्री की सहायता से स्वयं अपना कार्य-सम्पादन करते हैं उनके लिए तो कदाचित् ऐसा करना सम्भव हो सकता है, किन्तु चन्द्रगुप्त के लिए ऐसा करना नितान्त असम्भव है। क्योंकि दुरात्मा चन्द्रगुप्त सदा मन्त्री के ही आश्रित रहता है इसलिए अन्ध के समान सम्पूर्ण लोक-व्यवहार से

निभप वह कैसे स्वय प्रतिकार करने मे समर्थ हो सकता है ? क्योंकि—

अति उन्नत मत्री, नृप पर
पद रख श्री उनको भजती,
भार न सह के अति चचल
उभय में एक को तजती ॥ १३ ॥

तथा,

पृथक सचिव से हो, सौंप के भार, राजा
अतिशिशु स्तनपायी छोड ज्यों दूध माता,
जडमति जग-कार्यों में बना खूब अंधा,
नहि क्षण भर को भी कार्य में शक्त होता ॥ १३ ॥

मलयकेतु—(स्वगत) सौभाग्य से मै मत्री के आश्रित नही हूँ। (प्रकट) यद्यपि यह ठीक है, फिर भी बहुत से आक्रमण-कारणों के होने पर केवल मत्री-संकट को ढूंढकर शत्रु पर आक्रमण करने वाले राजा को सर्वथा सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

राक्षस—कुँवर जी सब काम सर्वथा सिद्ध हुआ ही समझें। क्योंकि—

अति बलशाली तुम रण-उद्यत,
पुरजन नव-स्नेह-निलीन,
पद-च्युत चाणक्य हुआ जब,
मौर्य बना वह नृपति नवीन,
स्वाधीन हुआ

(आधा यह चुकने पर लज्जा का अभिनय करता हुआ)

प्रियवदक—इसका नाम जीव सिद्धि है।

राक्षस—(प्रकट) भद्र वेश मे लिवा लाग्रो।

प्रियवदक—जो मत्री जी की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(क्षपणक का प्रवेश)

क्षपणक—

मोह-रोग के वैद्य उन अर्हंतों की मान।
विरस प्रथम जो बाद में देते पथ्य-ज्ञान ॥ १८ ॥

(समीप जाकर) उपासक! आपको धर्म-लाभ हो।

राक्षस—ज्योतिषी जी! हमारी रण-यात्रा के लिए अनुकूल समय निश्चित कीजिए।

क्षपणक—(अभिनयपूर्वक सोचकर) उपासक! मुहूर्त का निर्णय हो गया। मध्याह्नोत्तर मगल-क्रिया के अयोग्य पूर्णचद्र-युक्त सुहावनी पूर्णिमा तिथि है, और नक्षत्र भी दक्षिण-दिग्वर्ती है। और—

पूर्ण-बिंब शशि उदित जब, होता हो रवि अस्त।
उदित-अस्त जब केतु, बुध लगन, गमन प्रशस्त ॥ १९ ॥

राक्षस—ज्योतिषी जी! पहले तो तिथि ही शुद्ध नहीं है।

क्षपणक—उपासक!

एक गुनी तिथि, चौगुना होता उडु एकांत।
चौंसठ गुण वाली लगन, ज्योतिष का सिद्धात ॥ २० ॥

इसलिए—

शुभ-फल-प्रद होती लगन, तज दो ग्रह यह क्रूर।
चद्र-सग चलते हुए, मिले लाभ भरपूर ॥ २१ ॥

राक्षस—ज्योतिषी जी! आप और ज्योतिषियों के साथ विचार कर लें।

चपलक—विचार कर लें आप मैं तो अपने घर जाऊँगा।

राजक—ज्योतिषी जी मूढ़ तो नहीं हो गए ?

चपलक—तुम से ज्योतिषी मूढ़ नहीं हुआ।

राजक—तो कौन हुआ है ?

चपलक—भगवान् कृतान्त। क्योंकि तुम अपने पक्ष को छोड़कर दूसरे के पक्ष को ठीक समझते हो।

(प्रस्थान)

राजक—प्रियंवदक ! देखो क्या समय है ?

प्रियंवदक—जो मंत्री जी की आज्ञा। (बाहर जाकर और फिर आकर) भगवान् सूर्य अस्त हुआ चाहते हैं।

राजक—(आसन से उठकर और देखकर) ओह ! भगवान् सूर्य अस्त हुआ चाहते हैं।

इस अनुरागी सूर्य-उदय में कुछ काल उपवन के तरु-जाल
अथवा धन-ज्वाला द्वारा संयुत घन मानों तत्काल;
अस्ताचल पर अब यह लटका, है तो फिर हा ! नीच चले
विभव नष्ट होने पर प्रायः तजते प्रभु को भृत्य भले ॥ २२ ॥

(सब का प्रस्थान)

पाँचवाँ अंक

(राक्षस की अंगुलि मुद्रा से मुद्रित पत्र और आभूषणों की पेटी हाथ में लिए सिद्धार्थक का प्रवेश)

सिद्धार्थक—अहा हा!

सींचें जिसको मति-जल-निर्झर,
देश, काल के कलश निरंतर,
विष्णुगुप्त की यह नीति-लता
हो जाएगी फल-भार-नता ॥ १ ॥

मैंने आर्य चाणक्य द्वारा लिखाया हुआ यह पत्र जिसपर अमात्य राक्षस के नाम की मोहर लग चुकी है, ले लिया है। इस आभूषणों की पेटी पर भी उसी की मोहर लगी है। अब मैं पटना जाने के लिए तैयार हूँ। अच्छा तो चलूँ। (घूमकर और देखकर) क्यों, क्षपणक आ रहा है? पहले ही इसका अशुभ दर्शन हो गया। तो सूर्य के दर्शन करके इसके दोष को दूर करता हूँ।

(क्षपणक का प्रवेश)

क्षपणक—

निर्मल-मति अर्हंत को करता पुण्य प्रणाम।
लोकोत्तर निज कार्य से पाता जो शुभ धाम ॥१॥

सिद्धार्थक—भदंत! प्रणाम।

क्षपणक—उपासक! तुम्हें धर्म-लाभ हो। (सिद्धार्थक की ओर ध्यान से देखकर) उपासक! ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने यात्रा करने के लिए मन में पक्की ठान ली है।

सिद्धार्थक—यह भदन्त ने कैसे जाना?

क्षपणक—उपासक! इसमें जानने की क्या बात है? यह यात्रा के समय को बताने वाला मुहूर्त और हाथ का पत्र ही बता रहा है।

सिद्धार्थक—यह तो भदन्त ने जान लिया कि मैं परदेश जा रहा हूँ। अच्छा भदन्त! यह तो बताओ—आज दिन कैसा है?

क्षपणक—(हँसकर) उपासक! मूँड़ मुड़ाकर तुम मुहूर्त पूछते हो!

सिद्धार्थक—भदन्त! अभी क्या बिगड़ा है? तो कहो यदि मुहूर्त अपने अनुकूल हुआ तो जाऊँगा, नहीं तो लौट जाऊँगा।

क्षपणक—उपासकों को लाभ प्रधान मुहूर्त से क्या प्रयोजन? अब इस मलयकेतु के शिविर से बिना मुद्रा के कोई नहीं जा सकता।

सिद्धार्थक—भदन्त! यहाँ ऐसा नियम कब से होगया?

क्षपणक—उपासक! सुनो, पहले तो मलयकेतु के शिविर में सब लोग बे रोक-टोक आ जा सकते थे। किंतु अब यहाँ से कुसुमपुर के समीप होने से किसी को भी बिना मुद्रा के आने-जाने की अनुमति नहीं मिलती। इसलिए यदि तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो निश्चिन्त होकर जाओ। नहीं तो लौटकर मन मारकर बैठो। कहीं पहरेदार हाथ पैर बाँधकर तुम्हें राज-दरबार में न ले जायें।

सिद्धार्थक—क्या भदन्त को यह मालूम नहीं कि मैं अमात्य राक्षस का समीपवर्ती अन्तरंग मित्र सिद्धार्थक हूँ? इसलिए मुद्रा-चिह्न के बिना भी बाहर जाते हुए मुझे कौन रोकने का साहस कर सकता है?

क्षपणक—उपासक ! चाहे तुम राक्षस के अंतरंग मित्र हो या पिशाच के, बिना मुद्रा-चिह्न के तुम्हारे बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है।

सिद्धार्थक—उपासक ! जाओ, तुम्हारा कार्य सिद्ध हो। मैं भी पटना जाने के लिए भागुरायण से मोहर लेने जाता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रवेशक

—

(पुरुष के साथ भागुरायण का प्रवेश)

भागुरायण—(स्वगत) अहो ! आर्य चाणक्य की नीति कैसी विचित्र है ! क्योंकि,

अनुमेय आविर्भाव जिसका, कठिन जिसका ज्ञान है,
है पूर्ण, जिसका कार्यवश अत्यल्प होता भान है।
फल-हीन होती है कभी, फल-युत कभी होती तथा,
नय-निपुण जन की नीति विधि-सम चित्र अद्भुत सर्वथा ॥३॥

(प्रकट) भद्र भासुरक ! कुमार मेरा दूर रहना पसंद नहीं करते। इसलिए इसी सभा-मंडप में आसन जमाओ।

पुरुष—यह रहा आसन। आर्य विराजें।

भागुरायण—(बैठकर) भद्र भासुरक ! जो कोई मुद्रा का अभिलाषी मिलने आए, उसे भेज देना।

पुरुष—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रस्थान)

भागुरायण—(स्वगत) दुःख है कि कुमार मलयकेतु को, जो कि हमसे इतना अधिक प्रेम करते हैं, हम धोखा दें ! अहो ! यह कितना कठिन कार्य है ! अथवा—

सत छोड़कर कुल-लाज निज यश लालचे भी त्याग को,
रखकर अधिक धन-लाभ-लिप्सा देख लघु धनदान को,
उचित-अनुचित ज्ञान्य जिसको सतत स्वामि-निदेश है,
भर्तांश धन भी क्या कभी करता विमर्श-विशेष है ॥७॥

(प्रतिहारी के साथ मलयकेतु का प्रवेश)

मलयकेतु—(स्वगत) अहो राक्षस के विषय में अनेक वितर्क के उठने के कारण व्याकुल हुआ मेरा मन किसी निश्चय पर न पहुँच पाता। क्योंकि—

क्या नंद-कुल-दृढ़-भक्त वह चाणक्य का तज ध्यान ही,
नंदान्वयी तज मौर्य-नृप से संधि कर के क्षीण ही?
स्थिर-भक्ति का कर ध्यान अथवा वचन निज पूरा करे,
यों घूमता मम हृदय चक्राकार-सा फिर से अरे ॥८॥

(प्रकट) विजया! कहाँ है भागुरायण?

प्रतिहारी—कुँवर जी! वे सामने बैठे शिविर से बाहर जाने वाले लोगों को आने-जाने का आज्ञा पत्र दे रहे हैं।

मलयकेतु—विजया! तुम जरा रुक जाओ जबतक कि वे मोड़कर बैठे हुए इनकी आँखों पर मैं हाथ रखता हूँ।

प्रतिहारी—जो कुँवरजी की आज्ञा।

(भासुरक का प्रवेश)

भासुरक—आर्य! यह क्षपणक आज्ञा-पत्र के निमित्त आप से मिलना चाहता है।

भागुरायण—भेज दो।

भासुरक—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रस्थान

(क्षपणक का प्रवेश)

क्षपणक–उपासकों को धर्म लाभ हो।

भागुरायण–(अभिनयपूर्वक देखकर स्वगत) अरे! राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है? (प्रकट) भदंत! क्या सचमुच तुम राक्षस के ही किसी काम के लिए तो नहीं जा रहे?

क्षपणक–(दोनो कान ढककर) शिव! शिव! उपासक! मैं तो वहीं जाऊँगा, जहाँ राक्षस अथवा पिशाच का नाम भी नहीं सुना जाता।

भागुरायण–भदंत! मित्र के साथ बड़े जोर का प्रेम भंग हो गया, तो राक्षस ने आपका क्या बिगाड़ डाला?

क्षपणक–उपासक! राक्षस ने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा, मैं अभागा स्वयं ही अपने कार्यों पर लज्जित हूँ।

भागुरायण–भदंत! तुम मेरे कौतूहल को बढ़ा रहे हो।

मलयकेतु–(स्वगत) और मेरे भी।

भागुरायण–मैं सुनना चाहता हूँ।

मलयकेतु–(स्वगत) मैं भी।

क्षपणक–उपासक! यह सुनने योग्य नहीं है, इसे सुनकर क्या करोगे?

भागुरायण–भदंत! यदि कोई गुप्त बात है तो रहने दो।

क्षपणक–नहीं उपासक! गुप्त बात नहीं है।

भागुरायण–तो कहिए।

क्षपणक–उपासक! ऐसी तो नहीं, तो भी बहुत कठोर है, मैं न कहूँगा।

भागुरायण–भदंत! तो मैं भी तुम्हें मुद्रांकित आज्ञा-पत्र न दूँगा।

क्षपणक—(स्वगत) अच्छा हुआ दुष्ट मलयकेतु ने यह बात सुन ली। मेरा काम पूरा हुआ।

(प्रस्थान)

मलयकेतु—(आकाश की ओर टकटकी बाँधकर मानो प्रत्यक्ष दीख पड़ रहा हो) राक्षस! क्या यह उचित है?

'तुम मित्र मेरे' सोचकर यह चित्त में निश्चित हो,
विश्वास कर तुम पर सभी निज काम छोड़े थे अहो!
यह तात मारा, वधुओं की अश्रु-धारा बह चली,
बस ठीक 'राक्षस' नाम की पदवी मिली तुमको भली ॥७॥

भागुरायण—(स्वगत) आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि—राक्षस के प्राणों की रक्षा की जाय। ऐसा ही होना चाहिए। (प्रकट) कुँवरजी! अधिक क्रोध न कीजिए। आप आसन को अलंकृत करें। मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

मलयकेतु—(बैठकर) मित्र! क्या कहना चाहते हो?

भागुरायण—कुँवरजी! अर्थशास्त्र के अनुगामी प्रयोजन के अनुसार ही शत्रु, मित्र तथा उदासीन की व्यवस्था किया करते हैं, न कि साधारण लोगों के समान स्वेच्छानुसार। क्योंकि राक्षस उस समय सर्वार्थसिद्धि को राजा बनाना चाहता था, इसलिए उसके इस कार्य में चंद्रगुप्त से भी अधिक बलवान् होने के कारण प्रातःस्मरणीय देव पर्वतेश्वर ही विघ्नरूप महान शत्रु थे और उसी समय राक्षस ने यह काम किया। इसलिए इस विषय में मुझे उसका अधिक दोष नहीं प्रतीत होता। देखिए, कुँवरजी!—

मित्र शत्रु रचती स्वकार्य से,
शत्रु मित्र रचती तथा यहाँ—

नीति बात बहुती भूला रही,
भूलता नर अवसर-अन्त में ॥८॥

इसलिए इस विषय में राक्षस अमात्य का पाप नहीं है। और नव राज्य की प्राप्ति तक इस पर अनुग्रह करना चाहिए। उसके बाद कुँवरजी उसे रखें या निकाल दें।

मलयकेतु—यही सही। मित्र ! तुमने ठीक सोचा। अमात्य के वध से जनता भड़क सकती है और इस प्रकार विजय में संदेह उत्पन्न हो सकता है।

(पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—जय हो कुँवरजी की। यह आर्य के शिविर का प्रधान द्वारपाल दीर्घचक्षु सूचित करता है कि—बिना मोहर का पत्र हाथ में लेकर शिविर से निकलते हुए इस आदमी को हमने पकड़ा है, इसलिए आर्य इसे देख लें।

भागुरायण—भद्र ! उसे लिवा लाओ।

पुरुष—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(पुरुष के साथ बँधे हुए सिद्धार्थक का प्रवेश)

सिद्धार्थक—(स्वगत)

दोष-विमुख गुण-मुख जो रहती है अविरत।
स्वामि-भक्ति को मैं करूँ जननी-तुल्य प्रणत ॥९॥

पुरुष—(समीप जाकर) आर्य ! यह रहा वह आदमी।

भागुरायण—(अभिनयपूर्वक देखकर) भद्र ! यह कोई पथिक है या यहीं किसी का कोई सेवक है?

सिद्धार्थक—आर्य ! मैं अमात्य राक्षस का समीपवर्ती सेवक हूँ।

भागुरायण—भले आदमी ! फिर किसलिए बिना आज्ञा-पत्र लिए शिविर से बाहर जाते हो ?

सिद्धार्थक—आर्य ! अधिक काय-वश मैं जल्दी में हूँ ।

भागुरायण—कौन-सा वह विशेष कार्य है, जिससे कि तुम राजा की आज्ञा को भंग करते हो ?

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! पत्र लाओ ।

सिद्धार्थक—(भागुरायण को पत्र देता है)

भागुरायण—(सिद्धार्थक के हाथ से पत्र लेकर मोहर देखकर) कुँवरजी ! यह पत्र है, यह राक्षस के नाम की मोहर है ।

मलयकेतु—जिससे कि मोहर न टूटे इस प्रकार खोलकर दिखाओ ।

भागुरायण—(बिना मुद्रा-भग के पत्र खोलकर दिखाता है)

मलयकेतु—(लेकर बाँचता है) 'स्वस्ति, यथास्थान कहीं से, कोई, कुछ, किसी पुरुष को सूचित करता है कि—हमारे शत्रु का अनादर करके सत्यवादी ने अपनी अपूर्व सचाई को प्रकट कर दिया । अब आप पूर्व-प्रतिज्ञात संधि के उपहार-स्वरूप वस्तु को प्रदान करके, हमारे पहले संधि किए हुए मित्रों का उत्साह बढ़ा, सत्य-प्रतिज्ञ बनकर, उन्हें प्रसन्न कीजिए । इस प्रकार अपनाए जाने पर, निश्चय ही, ये लोग,अपने आश्रय के छूट जाने पर, उपकारी आपकी सेवा करेंगे । यद्यपि सच्चे पुरुष कभी नहीं भूलते, तो भी हम आपको स्मरण कराते हैं । इन लोगों में कुछ शत्रु के धन और हाथियों को पाकर वैभवशाली होगए हैं, कुछ जागीरें प्राप्त करके । हमारे पास सत्यवादी आपने जो तीन अलंकार भेजे थे, वे हमें मिल गए । हमने भी पत्रोत्तर के रूप में कुछ भेजा है, उसे स्वीकार

कीजिए और मौखिक सन्देश परम विश्वास-पात्र सिद्धार्थक से सुन लीजिए। इति।

मलयकेतु—भागुरायण ! यह कैसा पत्र है ?

भागुरायण—भद्र सिद्धार्थक ! यह किसका पत्र है ?

सिद्धार्थक—आर्य ! मुझे पता नहीं।

भागुरायण—अरे धूर्त ! पत्र ले जा रहा है और यह तुझे पता नहीं कि यह किसका है ? अच्छा तब कुछ रहने दो यह बताओ—मौखिक सन्देश तुमसे कौन सुनेगा ?

सिद्धार्थक—(भय का अभिनय करता हुआ) आप लोग।

भागुरायण—क्या हम लोग ?

सिद्धार्थक—आप लोगों ने मुझे पकड़ लिया; इसलिए मुझे कुछ पता नहीं मैं क्या कह रहा हूँ।

भागुरायण—(क्रोध में आकर) तू अभी जान जायगा। भद्र भासुरक ! बाहर ले जाकर इसे तब तक खूब पीटो जब तक कि यह सारी बात न बता दे।

भासुरक—जो आर्य की आज्ञा।

(सिद्धार्थक के साथ प्रस्थान)

(भासुरक का पुनः प्रवेश)

भासुरक—आर्य ! पिटते-पिटते उसकी बगल में से यह राक्षस नाम की मोहरवाली आभूषणों की पेटी गिर पड़ी।

भागुरायण—(देखकर) कुँवरजी ! इस पर भी राक्षस की मोहर है।

मलयकेतु—यही पत्र का उत्तर होगा इसे भी बिना मोहर तोड़े खोलकर दिखाओ

भागुरायण—(विना मुद्रा-भग के खोलकर दिखाता है)

मलयकेतु—(देखकर) अरे! यह तो वही अलकार है, जो मैंने अपने शरीर से उतार कर राक्षस के लिए भेजा था। निश्चय यह पत्र चद्रगुप्त के लिए है।

भागुरायण—कुँवरजी! संदेह अभी दूर हुआ जाता है। भद्र! उसे फिर पीटो।

पुरुष—जो आर्य की आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आकर) आर्य! पिटने पर यह कहता है कि कुँवरजी को स्वय ही बताऊँगा।

मलयकेतु—अच्छा लिवा लाओ।

पुरुष—जो आर्य की आज्ञा।

(बाहर जाकर सिद्धार्थक के साथ प्रवेश)

सिद्धार्थक—(चरणों में गिरकर) कुँवरजी मुझे अभय-दान की कृपा करें।

मलयकेतु—भद्र! भद्र! शरणागत के लिए सदा अभय ही होता है, इसलिए जो ठीक ठीक है, कहो।

सिद्धार्थक—सुनें कुँवरजी। मुझे अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चंद्रगुप्त के पास भेजा है।

मलयकेतु—भद्र! अब मैं मौखिक सदेश सुनना चाहता हूँ।

सिद्धार्थक—कुँवरजी! मुझे अमात्य राक्षस ने यह संदेश दिया दिया है कि—ये पाँच राजा हैं, जो मेरे घनिष्ठ मित्र हैं और जिनके साथ आपकी पहले ही सधि हो चुकी है। एक—कुलूत देश के राजा चित्रवर्मा, दूसरे—मलय देश के अधिपति सिंहनाद, तीसरे—काश्मीर-नरेश पुष्कराक्ष, चौथे—सिंधु देश के राजा सिंधुसेन और पाँचवें—पारसीक-नरेश मेघाक्ष। इनमें से ही पहले तीन राजा मलयकेतु के राज्य

को चाहते हैं और कोई तो कोष तथा हस्ति-बल को। इसलिए जिस प्रकार महाराज ने चाणक्य को पृथक करके मुझे सन्तुष्ट किया है, उसी प्रकार हम लोगों का भी पूर्वोक्त कार्य पूरा करना चाहिए। यह इतना मौखिक सन्देश है।

मलयकेतु—(स्वगत) क्यों चित्रवर्मा आदि भी मेरे विरुद्ध हैं! इसीलिए राक्षस के साथ इतनी प्रगाढ़ मित्रता है! (प्रकट) विजया! मैं अमात्य राक्षस से मिलना चाहता हूँ।

प्रतिहारी—जो कुँवरजी की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(अपने घर में आसन पर विराजमान चिन्तित राक्षस का पुरुष के साथ प्रवेश)

राक्षस—(स्वगत) क्योंकि चाणक्य की सेना के पुरुष हमारी सेना में बहुत भर गए हैं इसलिए मेरा मन सदा शंकित रहता है। क्योंकि—

जो साध्य में निश्चित तथा साधन-सहित, स्थित पक्ष में
साधन नहीं है विधिकारी जो न लीन विपक्ष में;
जो तुल्य दोनों में स्वयं ही साध्य पक्ष-विरुद्ध है,
स्वीकार कर होता उसे नृप वादि-तुल्य निरुद्ध है ॥१॥

अथवा जिनकी उदासीनता का कारण हमने पहले ही जान लिया था और जो हमारे भेदों से पहले ही परिचित थे वे ही लोग हमारे साथ आ मिले हैं इसलिए मुझे उन्हें शंकित करने की आवश्यकता नहीं है। (प्रकट) प्रियंवदक, हमारी ओर से कुँवरजी के साथी राजाओं से कह दो कि अब प्रतिदिन कुसुमपुर समीप आता जा रहा है इसलिए

रण-यात्रा के समय आप सब लोग पृथक् पृथक विभाग बनाकर आगे बढ़ें। कैसे ?

व्यूह विरच खस-मगध-सैन्य-गण
रण में आगे करें प्रयाण,
यवनाधिप - गांधार - सैन्य भी
करें मध्य में यत्न महान,
चेदि - हूण - सहित शक-नृपति - गण
जावें पीछे शौर्य - निधान,
चित्रवर्म-आदिक सब राजा
बनें कुँवर के रण-परिवान ॥११॥

प्रियंवदक—जो मंत्री जी की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—जय हो, जय हो मंत्री जी की। मंत्री जी ! कुँवर जी आप से मिलना चाहते हैं।

राक्षस—भद्रे ! थोड़ी देर ठहरो। कौन है यहाँ पर ?

(पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—आज्ञा करें मंत्री जी।

राक्षस—भद्र ! शकटदास से कहो कि—कुँवर जी ने हमें आभूषण पहनाए थे, इसलिए विना अलंकार धारण किए मेरा अब कुँवरजी से मिलना ठीक नहीं है, अत: मैंने जो तीन अलंकार खरीदे हैं, उनमें से एक दे दो।

पुरुष—जो मंत्री जी की आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आकर) मंत्री जी ! यह वह अलंकार है।

राक्षस—(अभिनयपूर्वक देखकर फुफकार धारण कर सखा बो ! राज-कुल वाले भाई मार्ग बताओ।

प्रतिहारी—आएँ आएँ मंत्री जी।

राक्षस—(स्वगत) अधिकार भी ऐसी वस्तु है जो निरपराध पुरुष के लिए भी महान भय का कारण बन जाती है। क्योंकि—

> प्रभु से प्रथम बड़ों पर अनुचर विरोध करते,
> प्रभु के समीपवर्ती फिर फिर प्रीति करते,
> अतएव उच्च-पद से हैं नीच द्वेष करते,
> उन्नत पतन इसी से निज ठीक हैं समझते ॥१२॥

प्रतिहारी—(घूमकर) मंत्री जी ! ये कुँवर जी विराजमान हैं। आप उनके पास जा सकते हैं।

राक्षस—(अभिनयपूर्वक देखकर) अरे ! ये कुँवरजी विराजमान हैं।

> पूरे मन से अब भी जिसका ध्यान न देखा-भाला,
> अचल-नयन, कर कमल धरण कर मुख झुकाने वाला,
> प्रतिपक्ष-कार्य-भार से खाली मन जिसको कर डाला,
> धारण करता कर से मुख यह क्यों ! चंद्र-सा आला ॥१३॥

(पास जाकर) जय हो, जय हो कुँवर जी की।

मलयकेतु—आर्य ! नमस्ते। इस आसन पर विराजिए।

राक्षस—(बैठ जाता है)

मलयकेतु—मंत्रीजी ! बहुत दिनों से आपके दर्शन न होने से हमारा मन दुखी है।

राक्षस—कुँवरजी ! रण-यात्रा-संबंधी प्रबंध में लगे रहने के कारण ही मुझे आपसे यह उलाहना मिला है।

मलयकेतु—मन्त्रीजी ! युद्ध-यात्रा के विषय में आपने कैसा प्रबंध किया है, यह मै सुनना चाहता हूँ ।

राक्षस—कुँवरजी ! आपके अनुगामी राजाओं को मैंने यह आदेश दिया है ।

(व्यूह विरच- रण में आगे करें प्रयाण इत्यादि फिर पढ़ता है)

मलयकेतु—(स्वगत) मै खूब समझता हूँ । क्यों, जो लोग मुझे मारकर चंद्रगुप्त की सेवा के लिए उद्यत हो रहे हैं, वे ही मुझे चारों ओर से घेर कर चलेंग ! (प्रकट) आर्य ! क्या ऐसा कोई पुरुष है, जो कुसुमपुर जाता है अथवा वहाँ से यहाँ आता है ?

राक्षस—कुँवरजी ! अब आने-जाने का काम बंद हो चुका । परंतु पांच-छ दिन में हम स्वयं ही वहाँ जायेंगे ।

मलयकेतु—(स्वगत) मैं खूब जानता हूँ । (प्रकट) यदि ऐसी बात है, तब क्यो आपने इस पुरुष को पत्र लेकर कुसुमपुर भेजा था ?

राक्षस—(देखकर) अरे ! सिद्धार्थक है ! भद्र ! यह क्या ?

सिद्धार्थक—(आँखों में आँसू भर लज्जा का अभिनय करता हुआ) क्षमा करें, क्षमा करें, मंत्रीजी । मंत्रीजी ! जब मुझे बहुत पीटा गया, तो मैं आपके रहस्य को न छिपा सका ।

राक्षस—भद्र ! यह कौन-सा रहस्य है, मुझे सचमुच तुम्हारी बात समझ में नहीं आ रही ।

सिद्धार्थक—मै बताता हूं, पिटते-पिटते मैने.

(आधी बात कह चुकने पर भय से मुँह नीचा कर लेता है)

मलयकेतु—भागुरायण ! स्वामी के आगे भय और लज्जा के कारण यह कुछ न कहेगा । इसलिए तुम स्वयं ही इनसे कह दो ।

भागुरायण—श्री कुँवरजी की आज्ञा। भद्र! यह कहता है कि—अमात्य राक्षस ने पत्र और मौखिक सन्देश देकर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक! क्या यह ठीक है?

सिद्धार्थक—(लज्जा का अभिनय करता हुआ) जब मुझ पर बहुत मार पड़ी तब मैंने ऐसा कह दिया।

राक्षस—कुँवर जी! यह झूठ है। पिटने पर कौन क्या नहीं कह सकता?

मलयकेतु—भागुरायण! पत्र दिखाओ और मौखिक सन्देश यह इसका भृत्य स्वयं कहेगा।

भागुरायण—(पत्र को पढ़ता हुआ)

(स्वस्ति यथास्थान कहीं से कोई कहीं किसी को इत्यादि पढ़ता है)

राक्षस—कुँवर जी! यह सब शत्रु का कार्य है।

मलयकेतु—पत्रोत्तर के रूप में जब आर्य ने यह अलंकार भेजा है तब यह कैसे शत्रु का कार्य हो सकता है? (आभूषण दिखलाता है।)

राक्षस—(आभूषण की ओर ध्यान से देखकर) कुँवरजी! यह मैंने नहीं भेजा। यह कुँवरजी ने मुझे दिया था और मैंने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दे दिया।

भागुरायण—अमात्य! अमात्यजी! ऐसे विशिष्ट अलंकार का, विशेष कि स्वयं कुँवरजी ने अपने शरीर से उतारकर दिया हो, क्या यही दान-पात्र है?

मलयकेतु—और मौखिक सन्देश भी हमारे अमात्य विश्वास-भाजन सिद्धार्थक से सुन लीजिए—यह आर्य ने लिखा है।

राक्षस—कैसा मौखिक संदेश ? किसका पत्र ? यह पत्र ही हमारा नहीं है।

मलयकेतु—यह फिर किसकी मोहर है ?

राक्षस—धूर्त लोग बनावटी मोहर भी बना सकते हैं।

भागुरायण—कुंवरजी ! मंत्रीजी ठीक कहते हैं। सिद्धार्थक ! यह पत्र किसने लिखा है ?

सिद्धार्थक—(राक्षस के मुंह की ओर देखकर चुपचाप मुंह नीचा करके खड़ा रहता है।)

भागुरायण—अपना खून मत करो, बोलो।

सिद्धार्थक—आर्य ! शकटदास ने।

राक्षस—कुंवरजी ! यदि शकटदास ने लिखा है, तो मैंने ही लिखा है।

मलयकेतु—विजया ! मैं शकटदास से मिलना चाहता हूँ।

प्रतिहारी—जो कुंवरजी की आज्ञा।

भागुरायण—(स्वगत) आर्य चाणक्य के गुप्तचर अनिश्चित बात कभी न कहेंगे। अथवा शकटदास आकर कदाचित् 'यह वही पत्र है,' यों पहचानकर पूर्व-वृत्तांत को प्रकट कर दे। ऐसा होने पर, संभव है, मलयकेतु मन में संदेह उत्पन्न होजाने के कारण इस प्रयोग के विषय में बहक जाय। (प्रकट) कुंवरजी ! शकटदास कभी भी अमात्य राक्षस के संमुख यह स्वीकार नहीं करेगा कि—यह पत्र मैंने लिखा है। इस-लिए इसके दूसरे लिखे लेख को ले आओ। क्योंकि अक्षरों की समता ही इस सारी बात का निर्णय करेगी।

मलयकेतु—विजया ! ऐसा ही करो।

भागुरायण—कुंवरजी ! यह मोहर भी ले आए।

मलयकेतु—दोनों ही वस्तु ले आओ।

प्रतिहारी—जो कुँवरजी की आज्ञा। (बाहर जाकर और फिर आकर) कुँवरजी! यह वह शकटदास का अपने हाथ का पत्र और मोहर है।

मलयकेतु—(लेख और मुद्रा की ओर अभिनयपूर्वक देखकर) आर्य! अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस—(स्वगत) अक्षर मिलते हैं किन्तु शकटदास मेरा मित्र है इसलिए नहीं भी मिलते। तो क्या शकटदास ने लिखा है? अथवा

> अविचल यश को तज किया चंचल धन का लोभ!
> भूल नृपति की भक्ति या सुत वनिता का ध्यान ॥१७॥

अथवा इसमें संदेह की क्या बात है?—

> मुद्रा है कर-वर्तिनी उसके की सिद्धार्थ भी मित्र है,
> देखो जो उसके लेख-शैली-सम है यह नीति का पत्र है;
> आचार्यों प्रभु-भक्ति-हीन उसने निश्चय अपनी जानु है,
> चंचल भेद-अधीन प्राण मिलके भी है नयी ही भूरी ॥१८॥

मलयकेतु—आर्य! जो तीन अलंकार श्रीमान् ने भेजे हैं, वे मिल गए यह आर्य ने लिखा है क्या उन्हीं में से यह एक है? (ध्यान से देखकर स्वगत) क्यों यह तो पिताजी का धारण किया हुआ आभूषण है! (प्रकट) आर्य! यह अलंकार आपको कहाँ से मिला?

राक्षस—जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु—विजया! तुम इस आभूषण को पहचानती हो?

प्रतिहारी—(गौर से देखकर आँखों में आँसू भरकर) कुँवरजी क्यों न पहचानूँगी इसे तपस्वी स्वर्गीय महाराज पर्वतेश्वर पहना करते थे

मलयकेतु—(आँखों में आँसू भरकर) हाय ! पिता जी !—

कुल-विभूषण ! भूषण ये वही,
पहनते जिनको तुम नित्य ही,
तुम सजे जिनसे, मुख-चन्द्र से,
शरद-रात्रि यथा उडु-चंद्र से ॥ १६ ॥

राक्षस—(स्वगत) क्यों पर्वतेश्वर ने इन्हें पहले पहना है—यह कहा इसने ? (प्रकट) यह स्पष्ट है कि ये आभूषण भी चाणक्य की प्रेरणा से ही उस वणिए ने हमें बेचे थे ।

मलयकेतु—आर्य ! पिता जी द्वारा धारण किए हुए और खास-कर चंद्रगुप्त के हाथ में पहुँचे हुए विशिष्ट आभूषण बनियों से मोल लिए हों, यह बात संगत-सी नहीं जान पड़ती । अथवा यह ठीक ही है—

मौर्य वणिक् ने था किया अधिक लाभ का काम ।
क्रूर आपने है मुझे बेचा इनके दाम ॥ १७ ॥

राक्षस—(स्वगत) अहो ! यह शत्रु की कूटनीति पूर्ण रूप से सफल हो गई ! क्योंकि—

'मेरा लेख नहीं' न मैं कह सकूँ, मुद्रा लगी जो अहा !
मैत्री भग्न हुई अहो ! शकट से, श्रद्धा किसे हो अहो !
मानगा यह कौन 'मौर्य नृप ने बेचे विभूषण' तथा ?
अच्छा है न अयुक्त उत्तर अत स्वीकार ही है भला ॥ १८ ॥

मलयकेतु—मैं आर्य से यह पूछता हूँ ।

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) कुँवरजी ! जो आर्य हैं, उनसे पूछिए, हम अब आर्य नहीं रहे ।

मलयकेतु—

स्वामि-गुण यह शौर्य तुम्हारा, मित्र-गुण तव मैं हूँ अनुचर,
धन यह देता तुम्हें, मुझे तुम देते हो धन-राशि निरंतर।
मान-सहित मंत्री बनकर भी दास शौर्य के, मेरे स्वामी
इसी करें जो तुम्हें, कौन-से अधिक स्वार्थ के हो तुम कामी॥१४॥

राक्षस—कुँवर जी! उपयुक्त बात कहकर आप ही ने मेरे लिए निर्णय दे दिया। क्योंकि—

("स्वामि-गुण यह शौर्य तुम्हारा—" इत्यादि को पुरुष, वचन का परिवर्तन करके पढ़ता है।)

मलयकेतु—(पत्र और आभूषण की पेटी की ओर निर्देश करके) तो यह क्या है?

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) यह सब भाग्य का खेल है। क्योंकि—

सन्मान हमसे तथा ममता स्नेह से मिलते यहीं
हम दास होकर भी सदा थे पुत्र-सम प्यारे यहाँ,
वे भूप लोक-चरित्र-विद् जिन बीच में धारे यहाँ!
उन काल-विषयी क्रूर विधि के कार्य ने मारे यहीं! ॥ १ ॥

मलयकेतु—(क्रोधपूर्वक) क्यों अब भी छिपाते हो कि यह खेल भाग्य का है हमारा नहीं? अनार्य!—

---

१ स्वामि-गुण यह शौर्य हमारा मित्र-गुण मम तुम ही अनुचर,
धन यह देता मुझे, तुम्हें मैं देता हूँ धन-राशि निरंतर।
मान-सहित मंत्री बनकर भी दास शौर्य का, तेरा स्वामी,
इसी करे जो मुझे, कौन-से अधिक स्वार्थ का हूँ मैं कामी?

कन्या प्राण-विनाशिनी विषमयी तुमने बना के अहा !
विश्वासी मम तात पूर्व छल से मारा अहो ! है यहाँ,
मन्त्री हो अब चन्द्रगुप्त रिपु का कैसा बड़ा है बना !
जो आरंभ किया हमें पलल-सा हे क्रूर ! हा ! वंचना ॥२१॥

राक्षस—(स्वगत) यह और घाव पर घाव हो गया ! (दोनो कान ढककर प्रकट) शिव ! शिव ! मैंने कदापि विष-कन्या का प्रयोग नही किया । मैं पर्वतेश्वर की ओर से निरपराध हूँ ।

मलयकेतु—फिर किसने पिता जी का वध किया है ?

राक्षस—इस विषय में भाग्य से पूछना चाहिए ।

मलयकेतु—(आवेश में आकर) इस विषय में भाग्य से पूछना चाहिए ?—जीवसिद्धि क्षपणक से नही ?

राक्षस—(स्वगत) क्यो, जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है ! दुःख है, मेरे हृदय पर भी शत्रुओ ने अधिकार कर लिया !

मलयकेतु—(क्रोधपूर्वक) भासुरक ! सेनापति शिखरसेन को आज्ञा दे दो कि—जो ये पाँच राजा, जिनके नाम ये हैं—कुलूताधिप चित्रवर्मा, मलय-नृपति सिंहनाद, काश्मीर-नरेश पुष्कराक्ष, सिंधुराज सुषेण और पारसीकाधिपति मेघाक्ष ये लोग राक्षस के साथ मैत्री गाँठ कर और हमें मारकर चन्द्रगुप्त की सेवा में जाना चाहते है । इनमें पहले तीन मेरे राज्य को चाहते हैं, उन्हें एक गहरे गढ़े में डालकर ऊपर से रेत भर दो । और अन्य दो मेरे हस्ति-बल को चाहते हैं, उन्हें हाथी-द्वारा मरवा डाला जाय ।

पुरुष—जो कुँवर जी की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

मलयकेतु—(क्रोधपूर्वक) राक्षस ! राक्षस ! मैं विश्वासघाती

मलयकेतु—

स्वामि-पुत्र यह मौर्य तुम्हारा, मित्र-पुत्र तव मैं हूँ अनुचर,
धन यह देता तुम्हें, मुझे तुम देते हो धन-राशि निरंतर।
मान-सहित मंत्री बनकर भी दास मौर्य के, मेरे स्वामी,
छली करें जो तुम्हें, कौन-से अधिक स्वार्थके हो तुम कामी॥१॥

राक्षस—कुँवर जी! चतुर बात गढ़कर पत्र ही मेरे लिए निर्णय दे दिया। क्योंकि—

("स्वामि-पुत्र यह मौर्य तुम्हारा" इत्यादि को पुनः शब्द का परिवर्तन करके पढ़ता है।)

मलयकेतु (पत्र और आभूषण की पेटी की ओर निर्देश करके) तो यह क्या है?

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) यह सब भाग्य का खेल है। क्योंकि—

सज्जन कुसुम तथा मनस्वी स्नेह से जिनके यहाँ,
हम दास होकर भी बने थे पुत्र-सम प्यारे महा,
वे भूप लोक-चरित्र-विद् जिस नीच ने मारे यहीं!
उस भाग्य-विजयी क्रूर विधि के कर्म ये सारे अहो! ॥ २ ॥

मलयकेतु—(क्रोधपूर्वक) क्यों, अब भी छिपाते हो कि यह दोष भाग्य का है हमारा नहीं? अमात्य!—

---

१ स्वामि-पुत्र यह मौर्य हमारा मित्र-पुत्र तव तुम ही अनुचर,
धन यह देता मुझे तुम्हें मैं देता हूँ धन-राशि निरंतर;
मान-सहित मंत्री बनकर भी दास मौर्य का तेरा स्वामी
छली करे जो तुम्हें, कौन-सी अधिक स्वार्थ का हूँ मैं कामी?

कन्या प्राण-विनाशिनी विषमयी तुमने बना के अहा !
विश्वासी मम तात पूर्व छल से मारा अहो ! है यहाँ,
मंत्री हो अब चंद्रगुप्त रिपु का कैसा बड़ा है बना !
जो आरम्भ किया हमें पलल-सा हे क्रूर ! हा ! बेचना ॥२१॥

राक्षस—(स्वगत) यह और घाव पर घाव हो गया ! (दोनों
ान ढककर प्रकट) शिव ! शिव ! मैंने कदापि विष-कन्या का प्रयोग
हीं किया। मैं पर्वतेश्वर की ओर से निरपराध हूँ।

मलयकेतु—फिर किसने पिता जी का वध किया है ?

राक्षस—इस विषय में भाग्य से पूछना चाहिए।

मलयकेतु—(आवेश में आकर) इस विषय में भाग्य से पूछना
चाहिए ?—जीवसिद्धि क्षपणक से नहीं ?

राक्षस—(स्वगत) क्यों, जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर
है ! दुःख है, मेरे हृदय पर भी शत्रुओं ने अधिकार कर लिया !

मलयकेतु—(क्रोधपूर्वक) भासुरक ! सेनापति शिखरसेन को
आज्ञा दे दो कि—जो ये पाँच राजा, जिनके नाम ये हैं—कुलूताधिप
चित्रवर्मा, मलय-नृपति सिंहनाद, काश्मीर-नरेश पुष्कराक्ष, सिंधुराज
सुषेण और पारसीकाधिपति मेघाक्ष ये लोग राक्षस के साथ मैत्री गाँठ
कर और हमें मारकर चंद्रगुप्त की सेवा में जाना चाहते हैं। इनमें
पहले तीन मेरे राज्य को चाहते हैं, उन्हें एक गहरे गढ़े में डालकर
ऊपर से रेत भर दो। और अन्य दो मेरे हस्ति बल को चाहते हैं, उन्हें
हाथी-द्वारा मरवा डाला जाय।

पुरुष—जो कुँवर जी की आज्ञा।

(प्रस्थान)

मलयकेतु—(क्रोधपूर्वक) राक्षस ! राक्षस ! मैं विश्वासघाती

राक्षस नहीं हूँ मैं सचमुच मलयकेतु हूँ। इसलिए आओ कूच की सोच कर चाणक्य की सेवा करो।

> विष्णुगुप्त औ मौर्य के यदि तुम आओ संग।
> त्रिवर्ग का दुर्नीति क्यों कर सकता मैं भंग॥ २२॥

भागुरायण—कुँवर जी! विलम्ब न कीजिए। शीघ्र ही कुसुमपुर को घरने के लिए अपनी सेनाओं को भेजिए।

> गौड़-तियों के लोध्र-गंध-युत मृदु कपोल कलुषित करते
> अलि-कुल-सम-रुचि कुटिल अलक के कालेपन को भी हरते
> रज-कण सेना-अश्व-खुरों से धूसरित हो जो ऊर्ध्व उड़ें,
> गज-मद-जल से लुप्त-लुप्त हो, शत्रु-शीश पर आज पड़ें॥२३॥

(सेवकों के साथ मलयकेतु का प्रस्थान)

राक्षस—(घबराहट के साथ) हाय! बड़ा कष्ट है! ये भी बेचारे चित्रवर्मा आदि मारे गए! तो क्या राक्षस के सारे यत्न मित्र नाश के लिए हैं न कि शत्रु-विनाश के लिए? तो मैं अभागा क्या करूँ!—

> क्या मैं जाऊँ तपवन? तप से शान्ति मिलेगी कहाँ अहो?
> क्या मैं जाऊँ प्रभु के पीछे? रिपु रहते स्त्री-कार्य अहो!
> खड्ग हाथ ले अरि-दल पर क्या टूट पड़ूँ? यह ठीक नहीं
> चन्दन-मोक्ष-चपल मन रोके, रोके यदि न कृतघ्न कहीं॥ २४॥

(सब का प्रस्थान)

छठा अंक

स्थान—कुसुमपुर

(सुसज्जित आनंद-मग्न सिद्धार्थक का प्रवेश)

सिद्धार्थक—

जय घन-श्याम ! कृष्ण ! केशी-काल हे !
जय बुध-नयन-चंद्र ! चंद्र-नृपाल हे !
जय नीति वह चाणक्य की अरि-नाशिनी,
सग सज चलती न जिसके वाहिनी ॥१॥

तो चलें, आज चिर के प्रिय-मित्र सुसिद्धार्थक से मिल ! (घूमकर और देखकर) यह प्रिय मित्र सुसिद्धार्थक तो इधर ही को आ रहा है ! अच्छा तो इसके पास चलता हूँ !

(सुसिद्धार्थक का प्रवेश)

सुसिद्धार्थक—

पान, महोत्सव आदि में देते क्लेश महान।
विना सुहृद सब सुख यहाँ करते दुख प्रदान ॥ २ ॥

मैंने सुना है कि मलयकेतु के शिविर से प्रिय-मित्र सिद्धार्थक आए हैं। तो जरा उन्हें ढूँढूँ। (घूमकर और समीप जाकर) ये रहे सिद्धार्थक।

सिद्धार्थक—(देखकर) क्यों, प्रिय वयस्य सुसिद्धार्थक इधर ही आ रहे हैं ! (पास जाकर) प्रिय मित्र सकुशल तो हैं ?

(दोनों परस्पर गले लगकर मिलते हैं।)

सुसिद्धार्थक—ओह ! मित्र ! तेरी कुशल कैसी ?—जिससे कि तुम बहुत दिनों बाद परदेश से लौटकर भी बिना बातचीत किए ही दूसरी ओर निकल गए।

सिद्धार्थक—क्षमा करें प्रिय-मित्र। क्योंकि मुझे मिलते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि—सिद्धार्थक ! जाओ यह प्रिय समाचार प्रियदर्शन महाराज चन्द्रगुप्त से कह दो। उसके बाद यह शुभ समाचार उन्हें देकर और महाराजा का प्रसाद प्राप्त करके मैं प्रिय वयस्य से मिलने के लिए आपके घर की ओर चला ही था।

सुसिद्धार्थक—मित्र ! यदि वह मेरे सुनने योग्य है तो मुझे भी सुनाओ—कौन-सा वह प्रिय समाचार प्रियदर्शन देव चन्द्रगुप्त को दिया है ?

सिद्धार्थक—प्रिय मित्र ! तुम्हारे लिए भी कोई बात न सुनाने योग्य हो सकती है? अच्छा तो सुनिए—बात यह है कि आर्य चाणक्य की नीति के कारण भ्रष्ट-बुद्धि नीच मलयकेतु ने राक्षस को चित्रवर्मा आदि पाँच राजाओं को मरवा डाला। ऐसा होने पर सब राजाओं ने यह जान लिया कि मलयकेतु बड़ा अविचार-शील और दुष्ट पुरुष है इसलिए अपनी अधिकार ला न निपुण होने के कारण अब वे मलयकेतु की छावनी को छोड़कर सैनिकों के भयभीत होकर भाग जाने पर परिमित साथियों के साथ अपने अपने देश का चले गए तब भद्रभट पुरुषदत्त डिंगरात बलगुप्त राजसेन भागुरायण रोहिताक्ष और विजयवर्मा आदि पुरुषों ने मलयकेतु को कैद कर लिया।

सुसिद्धार्थक—मित्र ! लोग तो ऐसा कहते हैं कि—भद्रभट आदि पुरुष महाराज चन्द्रगुप्त से उदास होकर,मलयकेतु की शरण में जा गए थे। फिर किसलिए यह कुकवि-रचित नाटक के समान आरम्भ में कुछ और अन्त में कुछ और ही हो गया ?

सिद्धार्थक—मित्र! सुनिए तो सही—दैव-गति के समान आर्य चाणक्य की नीति को भी कोई नहीं जान सकता। हम उसके आगे शीश झुकाते हैं।

सुसिद्धार्थक—मित्र उसके बाद?

सिद्धार्थक—मित्र! उसके पश्चात् इधर से आर्य चाणक्य सब-साधन-सम्पन्न महान सेना के साथ निकल पड़े और राज-विहीन संपूर्ण राज-सेना पर अपना अधिकार कर लिया।

सुसिद्धार्थक—मित्र! कहाँ?

सिद्धार्थक—मित्र! जहाँ ये—

मद-सदर्प चीखें करि ऐसे–
सजल-जलद-गर्जन हो जैसे।
कशा घात-भय-कंपित चंचल–
रण-सज्जित होते हय प्रतिपल ॥ ३ ॥

सुसिद्धार्थक—मित्र! यह सब तो रहने दो। यह बताओ कि सब लोगों के आगे अनादर पूर्वक पद-त्याग कर देने के बाद भी आर्य चाणक्य ने उसी मंत्री-पद को कैसे अंगीकार कर लिया?

सिद्धार्थक—मित्र! तुम तो इस समय बड़े भोले बन रहे हो, जो कि आर्य चाणक्य की बुद्धि की गहराई को जानना चाहते हो, जिसे कि अमात्य राक्षस भी न जान सके।

सुसिद्धार्थक—मित्र! अच्छा, अमात्य राक्षस अब कहाँ है?

सिद्धार्थक—मित्र! आर्य चाणक्य को यह समाचार मिला है कि वे उस प्रलय-कोलाहल के बढ़ने पर मलयकेतु की छावनी से निकल कर उंदुर नामक चर के साथ इसी कुसुमपुर में आए हैं।

सुसिद्धार्थक—मित्र! नंद का राज्य लौटाने के लिए भयंकर

समिद्धार्थक—ओह ! मित्र ! मेरी कुशल कैसी ?—जिससे कि तुम बहुत दिनों बाद परदेश से लौटकर भी बिना बातचीत किए ही दूसरी ओर निकल गए।

सिद्धार्थक—क्षमा करें प्रिय-मित्र। क्योंकि मुझे मिलते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि—सिद्धार्थक ! जाओ यह प्रिय समाचार प्रियदर्शन महाराज चन्द्रगुप्त से कह दो। उसके बाद यह शुभ समाचार उन्हें देकर और यह राजा का प्रसाद प्राप्त करके मैं प्रिय मित्र से मिलने के लिए आपके घर की ओर चला ही था।

समिद्धार्थक—मित्र ! यदि यह मेरे सुनने योग्य है तो मुझे भी सुनाओ—कौन-सा वह प्रिय समाचार प्रियदर्शन देव चन्द्रगुप्त को दिया है ?

सिद्धार्थक—प्रिय मित्र ! तुम्हारे लिए भी कोई बात न सुनाने योग्य हो सकती है ? अच्छा तो सुनिए—बात यह है कि आर्य चाणक्य की नीति के कारण भ्रष्ट-बुद्धि नीच मलयकेतु ने राक्षस के चित्रवर्मा आदि पाँच राजाओं को मरवा डाला। ऐसा होने पर सब राजाओं ने यह मान लिया कि मलयकेतु बड़ा अविचार-शील और दुष्ट पुरुष है इसलिए अपनी अधिकार-रक्षा में निपुण होने के कारण जब वे मलयकेतु की छावनी को छोड़कर सैनिकों के भयभीत होकर भाग जाने पर, परिमित साथियों के साथ अपने-अपने देश को चले गए तब भद्रभट पुरुषदत्त हिंगुरात बलगुप्त राजसेन भागुरायण रोहिताक्ष और विजयवर्मा आदि पुरुषों ने मलयकेतु को कैद कर लिया।

समिद्धार्थक—मित्र ! लोग तो ऐसा कहते हैं कि—भद्रभट आदि पुरुष महाराज चन्द्रगुप्त से उदास होकर, मलयकेतु की शरण में आगए थे तो किसलिए यह कुकवि-रचित नाटक के समान आरम्भ में कुछ और अन्त में कुछ और ही हो गया ?

अमात्य राक्षस से मिलना है। क्यों, यह तो सचमुच ही अमात्य राक्षस सिर पर पर्दा डाले इधर ही चला आ रहा है! इसलिए तबतक इन पुराने उद्यान-वृक्षों के पीछे छिपकर देखता हूँ कि यह कहाँ पर बैठता है। (घूमकर छिपकर बैठ जाता है)

(उपरिवर्णित रूप में सशस्त्र राक्षस का प्रवेश)

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) हाय! बड़े दुःख की बात है!—

आश्रय-हीन दीन कुलटा-सी लक्ष्मी चन्द्र-समीप गई,
देखा-देखी उसके पीछे जनता नृपति-प्रतीप गई,
श्रम-फल-विरहित मित्रों ने भी कार्य-भार सब छोड़ दिया!
अथवा क्या वे करें? शीश-बिन नाग-दशा को प्राप्त किया ॥५॥

और—

तज उच्च-कुल उस अवनि-पति पति-देव को वह सर्वथा,
लक्ष्मी गई छल से वृषल के पास में वृषली यथा।
जाकर वहीं फिर स्थिर हुई, इसमें अहो! हम क्या करें?
सब यत्न रिपु-सम विफल करता विधि, विपद कैसे तरें? ॥६॥

मैंने तो—

अनुचित ढँग से स्वर्ग-लोक को देवेश्वर क जाने पर,
किए प्रयत्न अनेक, बनाएँ शैलेश्वर को राजेश्वर!
उसके वध में उसके सुत को देना चाहा वह सम्मान,
हुई विफलता फिर भी, विप्र न नंद-वंश-रिपु, दैव महान ॥७॥

अहो! म्लेच्छ मलयकेतु कितना अविचारशील है! क्योंकि—

'करता है जो उपरत प्रभु की सेवा पण रख प्राण
प्रभु-रिपु-सँग में क्यों वह राक्षस करे संधि का मान!

उद्योग करनेवाले अमात्य-राक्षस कुसुमपुर से निकलकर और सब निष्फल-प्रयत्न हो फिर भी कैसे इसी कुसुमपुर मे आगए ?

सिद्धार्थक—मित्र ! मेरा तो ऐसा विचार है कि चन्दनदास में प्रेम होने के कारण।

समिद्धार्थक—मित्र ! यह ठीक है कि चन्दनदास मे प्रेम होने के कारण किन्तु क्या तुम सोचते हो कि चन्दनदास छूट जायगा ?

सिद्धार्थक—मित्र ! उस अभागे का छुटकारा कहाँ होगा ? आर्य चाणक्य की आज्ञा से हमी दोनो को उसे वध्य-स्थान में ले जाकर मारना है।

समिद्धार्थक—(क्रोधपूर्वक) मित्र ! क्या आर्य चाणक्य के पास और कोई घातक नहीं है जो हम दोनो इस क्रूर कार्य में नियुक्त किए जा रहे है ?

सिद्धार्थक—मित्र ! ऐसा कौन है, जो इस जीव-लोक में जीवित रहना चाहता हो और आर्य चाणक्य की आज्ञा को भंग करे ? इसलिए आओ चाण्डाल का वेष बनाकर चन्दनदास को वध्य-स्थान में ले चलें।

(दोनो का प्रस्थान)

प्रवेशक

स्थान—कुसुमपुर के बाहर पुरानी वन-वीथी

(फाँसी हाथ में लिए एक पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—

गल-रचित-पाशानना, षड्गुण-ग्रथित ललाम।
जय रिपु-बन्धन में कुशल विष्णुगुप्त-नय-दाम ॥४॥

(घूमकर और देखकर) यह वही प्रदेश है, जो गुप्तचर उदुंबर ने आर्य चाणक्य को बताया है और यहीं आर्य चाणक्य की आज्ञा से मुझे

यत्न-विनिर्मित राजभवन का कुल-सम हुआ प्रणाश,
सुजन-हृदय-सम, सर है सूखा, पाकर मित्र-विनाश,
भाग्य-रहित की नीति-सदृश तरु लक्ष पडते फल-हीन,
मूढ-मनुज-मति दुर्नय से ज्यों, अवनी तृण-गण-लीन ॥११॥

और यहाँ—

फटी हुई है तरुवर-शाखा, पाकर भीषण परशु-प्रहार,
पारावत-रव-मिस है झरती पीडा-सहित करुण-रस धार,
परिचित का दुख देख कृपा-युत ले-लेकर श्वासावलियाँ,
इनके व्रण पर बांध रहे अहि,वसन-रूप निज काँचलियाँ ॥१२॥

और ये बेचारे—

शुष्क-हृदय तरु कीट-व्रणों से
मानों अश्रु बहाते हैं,
पत्र-च्छाया-हीन दुखित अति
सब श्मशान को जाते हैं ॥१३॥

तो तबतक भाग्य-हीन के लिए सुलभ इस टूटी-फूटी शिला पर कुछ देर बैठता हूँ। (बैठकर और सुनकर) ऐं! यह अचानक शंख और ढोल के शब्द से मिला हुआ कैसा मंगल-गान सुन पडता है?—जो यह,

फोड रहा है अति भीषण अब, श्रोताओं के कान,
प्रासादों से निकल रहा जब, कर न सके वे पान।
ढोल-शंख-रव से मिलकर यह, मंगल-स्वर संचार,
कौतूहल-वश बढता मानों, लखने दिग्-विस्तार ॥१४॥

(सोचकर) अच्छा,समझ गया। यह मंगल-गान निश्चयही मलयकेतु के पकडे जाने के कारण हो रहा है, जो कि राज-कुल की (आधा कह चुकने पर डाह से) मौर्य-कुल की अधिक प्रसन्नता को सूचित कर रहा

नीच भीरुता यह सोच न पाया कैसा मूर्ख महान !
भाग्य-हीन का अथवा सारा जाता रहता ज्ञान ॥८॥

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़कर राक्षस भले ही मर जाए, किन्तु चन्द्रगुप्त के संग यह कदापि सन्धि नहीं करेगा ! अथवा अपयश की अपेक्षा प्रतिज्ञा का झूठा हो जाना मुझे अभीष्ट है किन्तु शत्रु-द्वारा वंचित होकर तिरस्कार का भाजन बनना मैं अच्छा नहीं समझता । (चारों ओर देखकर आँखों में आँसू भरकर) ये वे ही कुसुमपुर के समीप के स्थान हैं जिनकी धरतियों को महाराज नन्द अपने पद-संचार से पवित्र किया करते थे । इसी प्रदेश में—

धनुष तानते समय जिन्होंने ढीला तथा समान
चलता तुरग चढ़ नृप ने छोड़े तीखे लक्ष्य समान ।
इस उपवन में नृप-गोष्ठ बातों की बिन उनके आज,
देख कुसुमपुर-भूमि हृदय में उमड़ा दुःख-समाज ॥९॥

इसलिए मैं मन्दभागी अब कहाँ जाऊँ ? (देखकर) अच्छा यह पुराना उद्यान सामने ही दीख रहा है । इसमें जाकर कहीं न कहीं से चन्दनदास का पता लगाऊँगा । (घूमकर स्वगत) अहा ! कोई नहीं जानता कि मनुष्य को भले-बुरे भाग्य का फल कब भुगतना पड़े ! क्योंकि

शशि-सम जिसको पुर-जन लखते थे अंगुलि-निर्देश,
नृप-गण-परिवृत निकला करता पुर से कुसुम-नरेश;
उसी नगर में, यही अहो ! मैं ही अब श्रम-फल-हीन,
चल है तस्कर-सदृश पुरातन-उपवन-वीथि में लीन ॥१०॥

अथवा जिनकी कृपा से यह सब कुछ था वे ही अब नहीं रहे । (अभिनयपूर्वक भीतर जाकर और देखकर) अहो ! इस प्राचीन उद्यान की सारी शोभा जाती रही । क्योंकि यहाँ—

हूँ। इस नगर मे सेठ जिष्णुदास नाम का एक जोहरी है।

राक्षस—(स्वगत) है जिष्णुदास—चदनदास का प्रगाढ मित्र। (प्रकट) उसके विषय मे क्या बात है ?

पुरुष—वह मेरा प्रिय मित्र है।

राक्षस—(हर्षपूर्वक स्वागत) एँ! प्रिय-मित्र बताता है! बडा निकट सबध है। अहा! अब चदनदास का समाचार मिल जायगा। (प्रकट) भद्र! उसके विषय में क्या बात है ?

पुरुष—(आँखो में आँसू भरकर) वह अब गरीबो को अपना सारा धन लुटाकर अग्नि-प्रवेश की इच्छा से नगर छोडकर चला गया। इसलिए मै भी जबतक प्रिय मित्र के विषय में कोई न सुनने योग्य बात नहीं सुनता, तबतक स्वय फाँसी खाकर मर जाऊँ, इसीलिए इस पुरानी वाटिका में आया हूँ।

राक्षस—भद्र! तुम्हारे मित्र के अग्नि-प्रवेश का क्या कारण है ?

क्या वह पीडित महारोग से,
जिसका कुछ उपचार नहीं ?

पुरुष—आर्य! नही, नही।

राक्षस—

क्या वह पीडित नृपति-क्रोध से,
अनल, गरल से उग्र कहीं ?

पुरुष—आर्य! ऐसा मत कहिए। चद्रगुप्त के राज्य में ऐसा कठोर काम नही हो सकता।

राक्षस—

मोहित हो क्या दुर्लभ इसने
चाही जग में पर-नारी ?

है। (आँखों में आँसू भरकर) ओह! कितने दुःख की बात है।—

अरि-लक्ष्मी-परिचय मुझे किया यहाँ ! निर्लेप।
मुझे सताने के लिए विधि का यत्न विशेष ॥१४॥

पुरुष—बैठे हुए हैं तो अब आर्य चन्दनदास की आज्ञा पूर्ण करूँ। (राक्षस की ओर न देखता हुआ-सा उसके आगे अपने गले में फाँसी बाँधता है)

राक्षस—(देखकर स्वगत) ए! यह क्यों अपने को फाँसी दे रहा है? निश्चय ही यह मुझ-जैसा ही दुखिया है। अच्छा इससे पूछता हूँ। (समीप जाकर प्रकट) भले आदमी! यह क्या कर रहे हो?

पुरुष—(आँखों में आँसू भरकर) आर्य! प्रिय मित्र के विनाश से दुःखी होकर जो कुछ मुझ-सरीखा अभागा मनुष्य किया करता है।

राक्षस—(स्वगत) मैंने पहले ही जान लिया था कि—यह बेचारा मेरे समान ही कोई दुखिया है। (प्रकट) भद्र! तुम भी मेरे समान दुःखी हो। यदि यह कोई रहस्य या बड़ी भारी बात न हो तो मैं सुनना चाहता हूँ कि आपके प्राण-त्याग का क्या कारण है?

पुरुष—(भलीभाँति सोचकर) आर्य! न रहस्य है और न कोई बड़ी भारी बात है, तो भी प्रिय मित्र के विनाश से दुःखी-हृदय मैं क्षणभर के लिए भी मृत्यु-काल को नहीं टाल सकता।

राक्षस—(गहरी साँस लेकर स्वगत) दुःख है! मित्र की ऐसी घोर विपत्ति में भी पराए की तरह उदास हमें यह नीचा दिखा रहा है। (प्रकट) भद्र! यदि छिपाने योग्य नहीं अथवा न कोई बड़ी भारी बात है तो मैं फिर सुनना चाहता हूँ बताओ तुम्हारे दुःख का क्या कारण है?

पुरुष—ओह! आर्य का हठ! विवश हूँ। अभी बतलाता

राक्षस—(स्वगत) दूसरा वज्र अभी हृदय पर गिरने वाला है। (प्रकट) उसके बाद ?

पुरुष—इसलिए जिष्णुदास ने प्रिय मित्र के स्नेह के अनुरूप आज चंद्रगुप्त से विनय की।

राक्षस—क्यों, कैसी ?

पुरुष—देव ! मैंने अपने घर में कुटुंब के पालन पोषण के लिए बहुत-सा धन रख छोड़ा है। वह आप ले लीजिए और मेरे प्रिय मित्र चंदनदास को छोड़ दीजिए।

राक्षस—(स्वगत) वाह ! जिष्णुदास ! वाह ! अहो ! तुमने मित्र-प्रेम दिखा दिया। क्योंकि—

पिता पुत्रों के हा ! सुत जनक के प्राण हरते,
तथा मित्रों को भी सुहृद जिसके हेतु तजते,
उसी प्यारे को जो तुम-सदृश तैयार तजने,
तुम्हें पाके सो ही धन सफल निर्लोभ वनिये !॥ १७ ॥

(प्रकट) भद्र ! तब उस प्रकार विनती करने पर मौर्य ने क्या कहा ?

पुरुष—आर्य ! तब सेठ जिष्णुदास के ऐसा कहने पर चंद्रगुप्त ने उत्तर दिया कि, 'जिष्णुदास ! मैंने धन के कारण सेठ चंदनदास को कैद नहीं किया है, किंतु इसने अमात्य राक्षस के परिवार को छिपाया और बहुत बार प्रार्थना करने पर भी उसे नहीं सौंपा। तो यदि वह अमात्य राक्षस के कुटुंब को सौंप देता है, तब तो वह छूट सकता है, अन्यथा उसे प्राण-दंड मिलेगा ही' यह कहकर चंदनदास को वध्यशाला में पहुँचा दिया। इसलिए 'जबतक कि मैं चंदनदास के विषय में कोई बुरी बात नहीं सुनता, तबतक अपने को समाप्त किए देता हूँ' इस कारण

पुरुष—(दोनों कान ढककर) आर्य ! ऐसा भी न कहिए। अत्यन्त विनम्र वैश्य लोग ऐसा नहीं किया करते और विशेषकर जिष्णुदास-जैसे।

राक्षस—

मित्र-नाश क्या सचमुच आपके
क्या अहो ! विनाशकारी ? ॥१६॥

पुरुष—आर्य ! यही बात है।

राक्षस—(चिन्तापूर्वक स्वगत) चन्दनदास इसके मित्र का प्रिय-मित्र है और प्रिय मित्र का विनाश ही इसके अग्नि-प्रवेश का कारण है, इसलिए सचमुच मेरा मित्र-प्रेम का पक्षपाती मन बहुत ही घबरा रहा है। (प्रकट) भद्र ! तुम्हारे मित्र का सुचर चरित्र मैं विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूँ।

पुरुष—आर्य मैं अभागा इससे अधिक अपनी मृत्यु में कोई विघ्न उत्पन्न करना नहीं चाहता।

राक्षस—भद्रमुख आप उस सुनने योग्य कथा का आरम्भ करें।

पुरुष—विवश हूँ। अच्छा अभी कहता हूँ सुनें आर्य।

राक्षस—भद्र ! मैं सावधान हूँ।

पुरुष—क्या आर्य जानते हैं कि इस नगर में सेठ चंदनदास नाम के एक जौहरी हैं ?

राक्षस—(दुःखपूर्वक स्वगत) यह भाग्य वाम ने हमें मृत्यु की ओर ले जानेवाला भीषण मार्ग खोल दिया है। हृदय ! धीरज धरो। तुम्हें अभी बहुत बुरा समाचार सुनना है। (प्रकट) भद्र ! सुना है कि वह सज्जन बड़ा मित्र-प्रेमी है। उसके विषय में क्या बात है ?

पुरुष—वह इस जिष्णुदास का प्रिय मित्र है।

राक्षस—(स्वगत) दुःख का वज्र अभी हृदय पर गिरने वाला है। (प्रकट) उसके बाद ?

पुरुष—इसलिए जिष्णुदास ने प्रिय मित्र के स्नेह के अनुरूप आज चंद्रगुप्त से विनय की।

राक्षस—क्यों, कैसी ?

पुरुष—देव ! मैंने अपने घर में कुटुंब के पालन-पोषण के लिए बहुत-सा धन रख छोड़ा है। वह आप ले लीजिए और मेरे प्रिय मित्र चंदनदास को छोड़ दीजिए।

राक्षस—(स्वगत) वाह ! जिष्णुदास ! वाह ! अहो ! तुमने मित्र-प्रेम दिखा दिया। क्योंकि—

पिता पुत्रों के हा ! सुत जनक के प्राण हरते,
तथा मित्रों को भी सुहृद जिसके हेतु तजते,
उसी प्यारे को जो दुख-सदृश तैयार तजने,
तुम्हें पाके सो ही धन सफल निर्लोभ बनिये ! ॥ १७ ॥

(प्रकट) भद्र ! तब उस प्रकार विनती करने पर मौर्य ने क्या कहा ?

पुरुष—आर्य ! तब सेठ जिष्णुदास के ऐसा कहने पर चंद्रगुप्त ने उत्तर दिया कि, 'जिष्णुदास ! मैंने धन के कारण सेठ चंदनदास को कैद नहीं किया है, किंतु इसने अमात्य राक्षस के परिवार को छिपाया और बहुत बार प्रार्थना करने पर भी उसे नहीं सौंपा। तो यदि वह अमात्य राक्षस के कुटुंब को सौंप देता है, तब तो वह छूट सकता है, अन्यथा उसे प्राण-दंड मिलेगा ही' यह कहकर चंदनदास को वध्यशाला में पहुँचा दिया। इसलिए 'जबतक कि मैं चंदनदास के विषय में कोई बुरी बात नहीं सुनता, तबतक अपने को समाप्त किए देता हूँ' इस कारण

अग्नि-प्रवेश की इच्छा से सेठ विष्णुदास नगर छोड़कर चला गया है। मैं भी जब तक प्रिय मित्र विष्णुदास के विषय में कोई बुरी बात नहीं सुनता तब तक गले में फाँसी बाँधकर प्राण-विसर्जन करूँ इसीलिए इस पुराने उद्यान में चला आया हूँ।

राक्षस—(घबराकर) चन्दनदास मार डाला तो नहीं गया?

पुरुष—आर्य! मारा तो नहीं गया। उससे बार-बार अमात्य राक्षस के कुटुम्ब को अवश्य माँग रहे हैं। किन्तु वह इतना मित्र-वत्सल है कि माँगने पर भी नहीं दे रहा इसीलिए उसकी मृत्यु में विलंब हो रहा है।

राक्षस—(प्रसन्न होकर स्वगत) वाह! मित्र! चन्दनदास! वाह! तुम धन्य हो

मिला तुम्हें शिबि को यथा रख शरणागत-प्राण।
पाया मित्र-परोक्ष में तुमने सुयश महान ॥ १७ ॥

(प्रकट) भद्र! भद्र! अब तुम शीघ्र जाओ विष्णुदास को चिता में कूदने से रोको। मैं भी चन्दनदास को मरने से बचाता हूँ।

पुरुष—अच्छा तो किस उपाय से आर्य चन्दनदास को मृत्यु से बचाएँगे?

राक्षस—(तलवार खींचकर) पुरुषार्थ के परम मित्र इस कृपाण से देखो भद्र—

जलधर रहित-गगन-तुल्य जिसकी कांति शोभित हो रही
यह समर पुलकित हाथ में मम खड्ग तज पड़ता नहीं,
जिसके अधिक बल की परीक्षा युद्ध-मध्य हुई सदा!
अब सुहृद-प्रेम-प्रवीन मुझको रण-समुद्यत कर रहा ॥१८॥

पुरुष—आर्य! इस प्रकार सेठ चन्दनदास के प्राण बच सकते हैं,

यह तो मैंने सुन लिया। किंतु मैं ऐसी विषम परिस्थिति में पड़ा हूँ कि आपके निर्णय को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। (देखकर चरणों में गिरकर) तो क्या आप ही प्रातःस्मरणीय अमात्य राक्षस हैं ?—मेरे इस संदेह को करने की आप कृपा करें।

राक्षस—भद्र ! स्वामि-कुल के विनाश से दुखी, मित्र-नाश का कारण तथा अपवित्र नाम वाला मैं वही यथार्थ नाम वाला पापी राक्षस हूँ।

पुरुष—(प्रसन्नतापूर्वक फिर चरणों में गिरकर) कृपा कीजिए, कृपा कीजिए। बड़ा आश्चर्य है ! सौभाग्य से मैं कृतार्थ हुआ।

राक्षस—भद्र ! उठो, उठो, अब विलंब मत करो, जिष्णुदास से कह दो कि राक्षस चंदनदास को अभी फाँसी से छुड़ाता है।

('जलधर-रहित-नभ-तुल्य ' इत्यादि पढ़ता हुआ खड्ग
हाथ में लेकर इधर-उधर घूमता है)

पुरुष—(पैरों में गिरकर) क्षमा करें, क्षमा करें अमात्य राक्षस। पहले दुष्ट चंद्रगुप्त ने यहाँ आर्य शकटदास के वध की आज्ञा दी थी। उसे कोई वध्य-शाला से हटाकर परदेश भगा ले गया। इसलिए नीच चंद्रगुप्त ने 'क्यों ऐसी असावधानी की' यह कहकर आर्य शकटदास के बचकर निकल जाने के कारण भड़की हुई क्रोधाग्नि को वधिकों के वधरूपी जल से शांत किया। तब से लेकर वधिक लोग जिस किसी नए पुरुष को हथियार हाथ में लेकर आगे-पीछे घूमता-फिरता देखते हैं, तो अपना जीवन बचाने के लिए बिना वध्य-शाला में प्रवेश किए बीच में ही वध्य पुरुष को मार डालते हैं। इसलिए यदि अमात्य-चरण इस प्रकार शस्त्र हाथ में लेकर वहाँ जायेंगे, तो सेठ चंदनदास की मृत्यु और जल्दी होगी।

(प्रस्थान)

सातवाँ अंक

स्थान—वध्य-शाला

(चांडाल का प्रवेश)

चांडाल—हटो सज्जनो ! हटो। दूर हो जाओ श्रीमान्‌जी ! दूर हो जाओ।

कुल, धन, वनिता, प्राण निज चाहें रखना आर्य।
तज दें विष-सम यत्न से नृप-विरोध का कार्य ॥१॥

क्योंकि—

अपथ्य-सेवन में दशा होती अथवा काल।
नृप-विरोध में सकल कुल पाता काल कराल ॥२॥

इसलिए यदि आप लोगों को भरोसा नहीं होता, तो वध्य-भूमि की ओर पुत्र स्त्री सहित जाते हुए राजद्रोही इस सेठ चंदनदास को देखो। सज्जनो ! क्या यह कहते हो—'क्या चंदनदास की मुक्ति का कोई उपाय है ?' इस अभागे के छुटकारे का क्या उपाय हो सकता है ? हो भी सकता है, यदि यह अमात्य राक्षस के परिवार को सौंप दे। क्या यह कहते हो—'वह शरणागत वत्सल अपने प्राणों के लिए ऐसा दुष्कर्म नहीं करेगा ?' सज्जनो ! यदि ऐसी बात है, तो उसकी शुभ गति का ध्यान करो, क्यों अब व्यर्थ आप लोग उपाय की बात सोच रहे हैं ?

(द्वितीय चांडाल के साथ, वध्यवेश को धारण किए, कंधे पर

स्त्री—आर्य ! यदि ऐसी बात है, तो अब कुटुंब का लौटना अनुचित है।

चंदनदास—तो अब आपने क्या निश्चय किया है ?

स्त्री—(आँखो में आँसू भरकर) स्वामी के चरणो का अनुगमन करने वाली नारी को स्वर्ग मिलता है।

चंदनदास—आर्ये ! तुम्हारा यह निश्चय ठीक नही। इसलिए अब तुम लोक व्यवहार से सर्वथा अनभिज्ञ इस भोले बालक का पालन करो।

स्त्री—प्रसन्न कुल-देवता इसकी रक्षा करें। बेटा ! अब फिर पिता जी के दर्शन नही होगे, प्रणाम कर लो।

पुत्र—(चरणों में गिरकर) पिता जी ! मैं आपके बिना क्या करूँगा ?

चंदनदास—बेटा ! जहाँ चाणक्य न हो, वहाँ रहना।

दोनों चांडाल—आर्य चंदनदास ! शूली गाड दी है, इसलिए, अब तैयार हो जाओ।

स्त्री—(रोती हुई) सज्जनो ! रक्षा करो, रक्षा करो।

चंदनदास—भद्रमुख ! कुछ देर ठहरो। प्राणप्रिये ! क्यो चीख रही हो ? वे राजा नंद तो स्वर्ग सिधार गए, जो प्रति दिन दुखी स्त्रियो पर दया किया करते थे।

पहला—अरे वेणुवेत्रक ! पकड ले इस चंदनदास को। कुटुंब के लोग अपने आप चले जायेंगे।

दूसरा—अरे वज्रलोमक ! अभी पकडता हूँ।

चंदनदास—भद्रमुख ! कुछ देर ठहरो, जब तक पुत्र से मिल लूँ। बेटा मरना तो अवश्य था ! किंतु मित्र के काम से मर रहा हूँ, इसलिए सोच मत कर।

पुत्र—पिता जी ! यह तो बताइए—क्या यह बात हमारे कुल में पहले से चली आ रही है ?

दूसरा—अरे वज्रलोमक ! पकड़ ले इसे ।

(दोनों चन्दनदास को सूली पर चढ़ाने के लिए पकड़ लेते हैं)

स्त्री—(*छाती पीटती हुई*) सज्जनो ! बचाओ बचाओ ।

(परदा को हटा कर राक्षस का प्रवेश)

राक्षस—आर्ये ! मत घबराओ मत घबराओ । अरे रे ! फाँसी देने वाले चाण्डालो ! चंदनदास को मत मारो । क्योंकि—

देखा जिसने निज प्रभु-कुल का रिपु-कुल-तुल्य विनाश,
देखा सुख से मान महोत्सव मित्र जनों का नाश;
अपमानित होकर भी तुमसे है जीवन प्रिय जिसको,
मृत्यु लोक-पथ बन्ध-माल यह अब पहनाओ मुझको ॥७॥

चन्दनदास—(देखकर आँखों में आँसू भर) अमात्य ! यह *क्या करने पर तुले हो* ?

राक्षस—तुम्हारे सुन्दर चरित्र का थोड़ा-सा अनुकरण ।

चन्दनदास—*अमात्य* ! मेरे सम्पूर्ण प्रयत्न को *निष्फल* करके आपने यह अच्छा नहीं किया ।

राक्षस—*मित्र* ! चन्दनदास ! उलाहने की कोई बात नहीं । क्योंकि संसार स्वार्थी है । भद्रमुख ! दुष्ट चाणक्य को यह समाचार दे दो ।

दोनों चाण्डाल—*कौन-सा* ?

राक्षस—

दुर्लभ-प्रिय इस कलियुग में भी रखते मित्र-प्राण
लघुकृत की यश-शाली जिसने शिबि की कीर्ति महान;
आत्म-चरित से मलिन किए हैं बौद्धों के सब कार्य
जिसके हेतु मारते उसको मैं हूँ वही अमात्य ॥८॥

पहला—अरे वेणुवेत्रक ! तुम जरा सेठ चंदनदास को लेकर थोड़ी देर इस श्मशान-वृक्ष की छाया में ठहरो, जबतक मैं आर्य चाणक्य को यह समाचार दे दूँ कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

दूसरा—अरे वज्रलोमक ! ऐसा ही सही।

(स्त्री-पुत्र-सहित चंदनदास के साथ प्रस्थान)

पहला—(राक्षस के साथ घूमकर) यहाँ पर कौन-कौन द्वारपाल हैं ? जाग्रा नंद-कुल की संपूर्ण सेनाओं को चूर-चूर करने में वज्र के समान और मौर्य-कुल में पूर्ण धर्म की स्थापना करने वाले उन आर्य चाणक्य को यह सूचित कर दो कि—

राक्षस—(स्वगत) यह सुनना भी राक्षस के भाग्य में लिखा था !

पहला—आर्य की नीति ने जिसकी बुद्धि को जकड़ दिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

(परदे के पीछे सारा शरीर छिपाए केवल मुँह बाहर निकाले हुए प्रसन्न चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य—भद्र ! कहो, कहो—

किसने भभकी आग वसन में अपने बाँधा ?
किसने बंधन डाल पवन की गति हूँ साधी ?
किसने करि-मद-गंध-सहित हरि पंजर डाला ?
किसने तैरा जलधि करों ने मकरों वाला ? ॥६॥

पहला—राजनीति के महान पंडित आप ही ने तो !

चाणक्य—भद्र ! नहीं, ऐसा न कहो। यह कहो कि—नंद-कुल के विरोधी दैव ने।

राक्षस—(देखकर स्वगत) एँ ! यह यह दुरात्मा अथवा महात्मा कौटिल्य है ? क्योंकि—

इसी लिए यह वृषल आप से मिलने के लिए आ रहा है। देखिए इसे—

राक्षस—(स्वगत) क्या करूँ ? (प्रकट) मै देख रहा हूँ।

(यथोचित वेश में सेवको के साथ राजा का प्रवेश)

राजा—(स्वगत) जो आर्य ने दुर्जय शत्रुओ को विना युद्ध के ही पराजित कर दिया, इससे मुझे लज्जा-सी अनुभव हो रही है, क्योंकि मेरे—

कार्य-विना लज्जित हुए, पाकर भी फल-योग,
नत-मुख शर तूणीर में करें शयन-व्रत-भोग ॥१०॥

अथवा—

शयन-निरत मुझ-सा नृपति, जगते सचिव उदार,
सकल जगत जय कर सके, तब भी धनु-व्यापार ॥११॥

(चाणक्य के समीप जाकर) आर्य ! चद्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य—वृषल ! तुम्हारे सब आशीर्वाद सिद्ध हो गए, इसलिए पूजनीय अमात्य राक्षस को प्रणाम करो, ये तुम्हारे पिताजी के मन्त्रियो में सबसे प्रधान हैं।

राक्षस—(स्वगत) इसने सबध जोड ही दिया।

राजा—(राक्षस के पास जाकर) आर्य ! मै चद्रगुप्त प्रणाम करता हूँ।

राक्षस—(देखकर स्वगत) अरे ! यह चद्रगुप्त है ! जो यह,

बचपन में ही लोक ने जाना उदय विशेष।
हुआ राज्य-आरूढ़ अब गज ज्यों यूथ-नरेश ॥१२॥

(प्रकट) राजन् ! आपकी विजय हो।

राजा—आर्य !

जग में क्या मैंने नहीं जीता, करो विचार।
आर्य-युगल जब ढो रहे निखिल राज्य का भार ॥१३॥

राक्षस—(स्वगत) चाणक्य का शिष्य मुझे सेवक समझ रहा है। अथवा यह इसकी शिष्टता ही है। क्योंकि चन्द्रगुप्त के प्रति स्नेह का भाव ही मुझसे विपरीत कल्पना करा रहा है। चाणक्य वस्तुतः बड़ा यशस्वी है। क्योंकि—

पाकर सत नृप मूर्ख भी मंत्री पाता मान।
लघु-सर-सम पटु भी गिरे पा नृप मूर्ख महान ॥१४॥

चाणक्य—अमात्य राक्षस! आप चन्दनदास के प्राण बचाना चाहते हैं?

राक्षस—अजी! विष्णुगुप्त! इसमें क्या सन्देह है!

चाणक्य—अमात्य राक्षस! बिना शस्त्र धारण किए ही आप चन्द्रगुप्त पर कृपा कर रहे हैं इसीलिए सन्देह है। इसलिए यदि आप सचमुच ही चन्दनदास का जीवन चाहते हैं तो लीजिए यह शस्त्र।

राक्षस—अजी! विष्णुगुप्त! नहीं ऐसा न कहो। हममें इसकी योग्यता कहाँ कि हम इसे ग्रहण करें और विशेषकर इस अवस्था में जब कि आप इसे ग्रहण किए हुए हैं।

चाणक्य—अमात्य राक्षस! आपने यह कैसे जाना कि मैं योग्य हूँ और आप अयोग्य? देखिए—

अविरल लगाम-कसे व्याकुल अश्वगण आकुल-तन
मद स्नान-भोजन-पान-शयन वर्जित समर-साधन-सजे;
ये शत्रु के अभिमान-भंजक एक बार विलोकिए,
इनकी दशा को देखकर फिर आत्म-बल अवधारिए ॥ १५ ॥

अथवा अधिक कहना व्यर्थ है। बिना आपके शस्त्र ग्रहण किए चन्दनदास नहीं बच सकता।

राक्षस—(स्वगत)

नंद-स्नेह भरा हुआ हृदय में मैं भृत्य हूँ शत्रु का
जो सींचे पहले स्व-हस्त-जल से वे वृक्ष ही काटता।

धारूँगा निज मित्र देह रखने में ही स्वयं शस्त्र को,
आती कार्य परंपरा न विधि की मेरे अहो ! ध्यान में ॥१६॥

(प्रकट) अजी ! विष्णुगुप्त ! लाओ खड्ग । जिसके लिए सारे काम करने पड़ते हैं, उस मित्र-प्रेम को मैं नमस्कार करता हूँ । क्या करूँ ? मैं तैयार हूँ ।

चाणक्य—(प्रसन्नता पूर्वक खड्ग देकर) वृषल ! वृषल ! अमात्य राक्षस ने अब शस्त्र ग्रहण करके तुम पर कृपा की है । सौभाग्य से आपकी वृद्धि हो रही है ।

राजा—यह चंद्रगुप्त आपका अत्यंत अनुगृहीत है ।

(पुरुष का प्रवेश)

जय हो, जय हो आर्य की । आर्य ! भद्रभट, भागुरायण आदि मलयकेतु को हथकड़ी-बेड़ी डालकर द्वार पर लाए हैं, यह सुनकर जो आर्य आज्ञा करें ।

चाणक्य—हाँ, सुन लिया । भद्र ! अमात्य राक्षस को कहो, ये ही अब राज कार्य करेंगे ।

राक्षस—(स्वगत) क्यों, अब मुझे अपने वश में करके चाणक्य मुझे ही कहने के लिए प्रेरित करता है ! क्या करूँ ? (प्रकट) महाराज चंद्रगुप्त ! यह तो आप जानते ही हैं कि हम मलयकेतु के पास कुछ दिन रहे हैं, इसलिए इसे प्राण-दान दे दो ।

राजा—(चाणक्य के मुँह की ओर देखता है ।)

चाणक्य—राजन् ! अमात्य राक्षस की इस पहली प्रार्थना को मान लीजिए । (पुरुष की ओर देखकर) भद्र ! हमारी ओर से भद्रभट आदि से कह दो कि—अमात्य राक्षस की प्रार्थना से महाराज चंद्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य सौंपते हैं, इसलिए आप लोग

उसके साथ चले जाएँ और उसे सिंहासन पर बैठाकर फिर लौट आएँ।

पुरुष—जो आर्य की आज्ञा।

चाणक्य—अरे ठहरो जरा! जरा! इसी प्रकार विजयपाल और दुर्गपाल से यह एक बात और कह देना कि—अमात्य राक्षस के शस्त्र-ग्रहण से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त आज्ञा देते हैं कि सेठ चंदनदास को पृथिवी भर का नगर-सेठ घोषित कर दिया जाय।

पुरुष—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रस्थान)

चाणक्य—महाराज चंद्रगुप्त! मैं अब और क्या तुम्हारा प्रिय करूँ?

राजा—इससे अधिक और क्या प्रिय हो सकता है?—

मैत्री राक्षस-संग में लखा भूपति मैं आर्य!
नंद सभी मारे गए, अधिक और क्या कार्य? ॥१७॥

चाणक्य—विजया! दुर्गपाल और विजयपाल से कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र-ग्रहण से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त आज्ञा देते हैं कि हाथी घोड़ों के सिवाय सब कैदियों को छोड़ दें। अथवा अमात्य राक्षस के नेतृत्व में हाथी घोड़ों की क्या चिंता है? इसलिए अब

हय-गज-युत सब लोक को कर दो बंधन-मुक्त।
पूर्ण-शपथ मैं निज शिखा करता बंधन-युक्त ॥१८॥

(शिखा बाँधता है)

प्रतिहारी—जो आर्य की आज्ञा।

(प्रस्थान)

चाणक्य—अमात्य राक्षस! अच्छा तो कहो, आपका और क्या प्रिय करूँ?

राक्षस——क्या इससे भी अधिक कुछ प्रिय हो सकता है ? यदि आपको संतोष नहीं है, तो यह सही—

प्रलय-लीन पृथिवी ने पहले अतिबल-सूकर-तनु-धारी
जिस ईश्वर की दंत-कोटि का लिया अहो! आश्रय भारी,
जिस नृप-प्रभु की पीन बाहु का यवन-दुखित अब अवलंबन
लिया, वही नृप-चंद्र बंधु-युत करे अवनि का दुःख-भंजन ॥१९॥

(सब का प्रस्थान)

संन्यासी

या

देश की आवाज़

[वीर-रस-प्रधान राष्ट्रीय नाटक]

—— × ——

लेखक
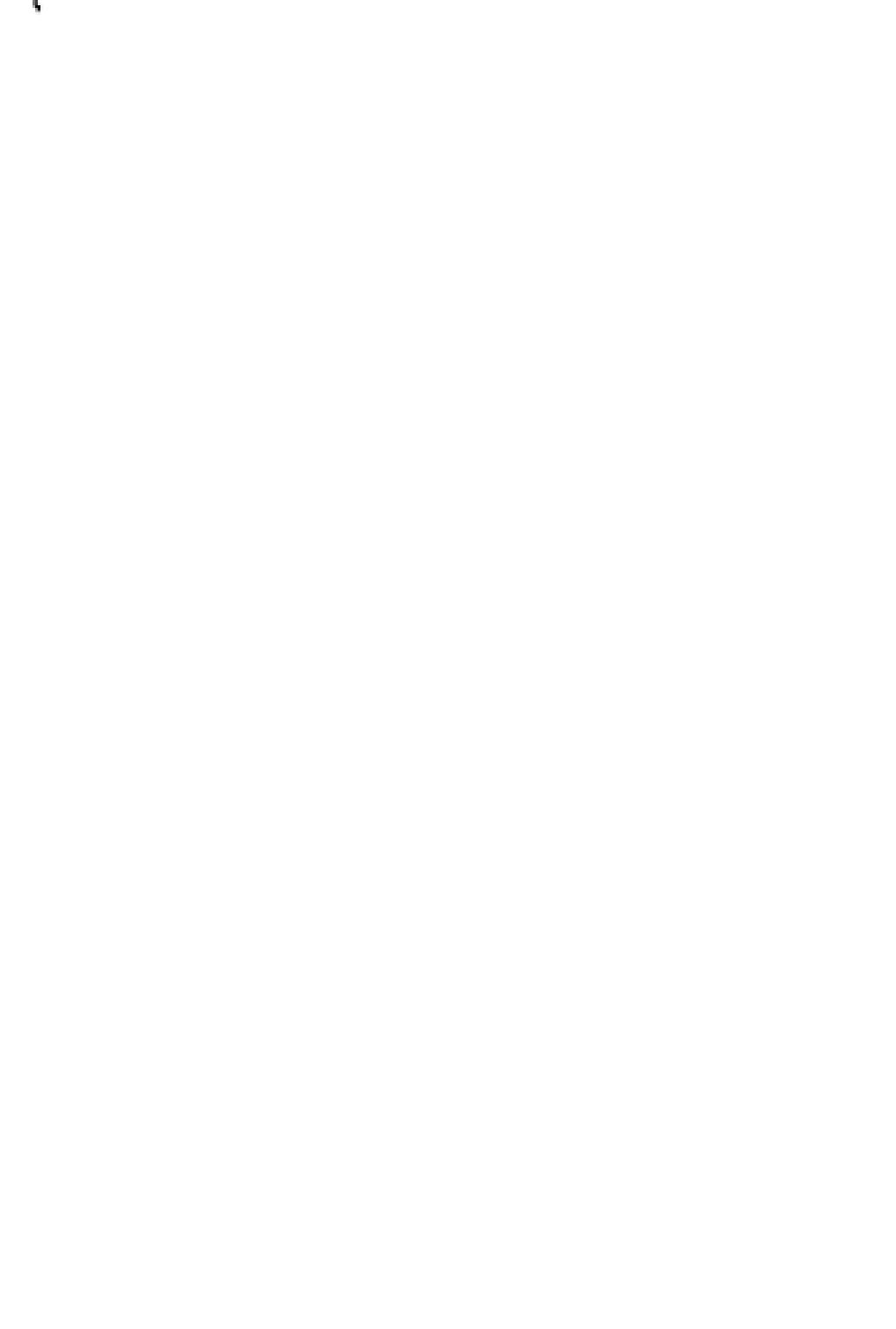
श्रीयुत भगवतस्वरूप जी जैन 'भगवत'
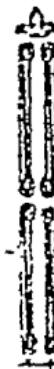
प्रकाशक

श्री भगवत् - भवन,

ऐत्मादपुर (आगरा)

मूल्य—दस आना

सजिल्द—चौदह आना

प्रकाशक
श्री भगवत् भवन
ऐत्मादपुर (आगरा)

सुशीला-स्मृति सीरीज़
की चौथी भेंट

—पहलीबार—

भावों में ठण्डक भर देने वाली और मनोमुग्ध कर
श्री भगवत् जी की चुनी हुई
कविताओं का संग्रह

चाँदनी

काले-बादलों को ठेलकर आशा है शीघ्र ही प्रगट
होने वाली है। दिल के एक कोने में इसका
इन्तजार भी करिये।

मई सन् १९४७
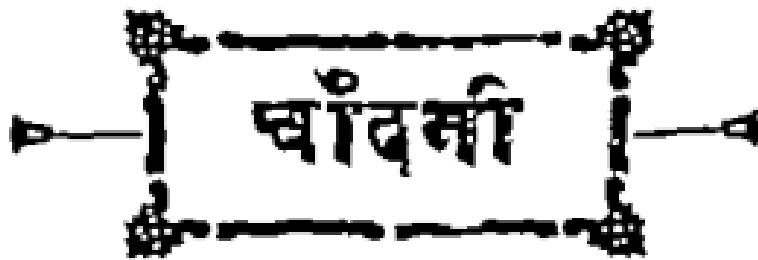
मुद्रक—
बा० कपूरचन्द जी जैन,
महावीर प्रेस, आगरा

हाँ ! इससे मैं इन्कार नहीं करता कि नाटक लिखना आसान काम नहीं है। प्रकृति के पुजारी और प्रतिभाशाली ही नाटक लिख सकते हैं। उनका लिखा दृश्य-काव्य ही 'नाटक' कहा जा सकता है, यह सही है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि निशा के श्याम-अंचल में दीप द्युति द्वारा प्रकाश किरणें प्रविष्ट न की जाएँ।

बस, इसी हृदय की कोमल-भावना पर प्रस्तुत पुस्तक की—मेरा आग्रह नहीं कि इसे आप नाटक कहें—नींव है। आज से सात वर्ष पहिले जब 'समाज की आग' पुस्तक लिखी थी। तभी से मन में एक भूख थी कि एक अभिनय पुस्तक और लिखूँ !

मैंने डरते-डरते क़लम उठाई। और उस क़लम से जो कुछ लिखा गया—यह आपकी नजर के आगे है। मुझे कुछ नहीं कहना। कहना है तो सिर्फ़ यह—कि कृपया इसमें विशुद्ध, और ऊँची हिन्दी देखने की आशा न करें। लेखनी को पूरी आजादी बरतने का मौक़ा दिया गया है। महज़ इसलिये कि अभिनय देखने वाली जनता को समान रूप से रुचिकर हो। और यह बात पुस्तक छपने से पेश्तर परख भी ली गई। स्थानीय ड्रेमेटिक क्लब ने इसे खेला, जनता ने आशा से अधिक प्रसन्नता और रुचि प्रगट की। लेकिन खेद यह रहा, कि अधिकारी वर्ग ने उत्तेजक कह कर बीच ही में रोक दिया। यों, इसे और भी लोगों की सहानुभूति मिली।

अब शायद मुझे अधिकार है, कि अपनी पूर्व-पुस्तकों की तरह इसे भी अपनाने के लिये आपसे कहूँ। साथ ही भूलों के लिये क्षमायाचना की रस्म को भी मैं अदा करना फ़र्ज़ समझता हूँ !

२२-१०-३६
विजयादशमी

आपका बन्धु—'भगवत्' जैन

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—	परिचय—
१—अजितसिंह	एकमोसा राजा
२—रणधीरसिंह	राजा का चालाक वज़ीर
३—विजयसिंह	राज्य का एक जागीरदार
४—गुरुदेव	एक वृद्ध साधु
५—प्रकाश	नौजवान साधु, बाद को [illegible]
६—जंगली	राज्य का वफादार [illegible] सिपाही
७—बेकार-युवक	निठल्ला व [illegible]
८—साधु-दल, जल्लाद पथिक, नकाबपोश वगैरह।	परिचय स्पष्ट

स्त्री-पात्र—	परिचय—
१—सुशीला	विजयसिंह की बेटी
२—सुषमा	बरखा
३—नायिकाएँ	परिचय प्रगट

[रूप पात्र रूप पात्रियाँ]

१—राम	मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२—लक्ष्मण	प्राणप्रिय राम के अनुज
३—समरसिंह	चित्तौड़ का एक क्षत्री
४—विद्युल्लता	समरसिंह की प्रसिद्ध [illegible]

संन्यासी

— या —

देश की आवाज़

[वीर-रस प्रधान, राष्ट्रीय-नाटक]

पहला अङ्क

पहला दृश्य

[सखी-मण्डल की सम्मिलित ईश प्रार्थना]

तू है दुख – हरण – हार ! तू ...... है...... !
तेरी शान बे - शुमार !
पावत ऋषि, मुनि न पार !
तू अनूप, तू अरूप—
जगपति वर्जित — विकार ! तू...... है ...... !१
सेवक तेरे भुवेश !
हरदो हमारे कलेश !
तू दयालु, तू कृपालु—
'भगवत' पद नमस्कार !
तू...है दुख, हरण हार !!२

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान—राजदरबार ! महाराज अजितसिंह सिंहासन पर विराजे हैं। एक ओर टेबिल पर शराब की बोतलें, जाम, कलम-दावात कागज वगैरह रखे हैं। समीप ही कुर्सी पर वज़ीर रणधीरसिंह जागीरदार विजयसिंह बैठे हैं।]

रणधीर०—(जाम देते हुए) एक जाम और लीजिए—महाराज !

अजित०—बस रहने दीजिए वज़ीर साहिब ! बहुत पी चुका !
न अब होश बाकी है न ख्वाहिश !

मुझ ही जाम कर दी आग दिल की सुर्ख-पानी ने !
दिखाईं अब नई-दुनियाँ मुझे मस्ती की रानी ने !
हटाकर सल्तनत का बोझ सारा मेरे कन्धों से—
मुझे जन्नत में पहुँचाया तुम्हारी जाँ फ़िशानी ने !!

रणधीर—(सविनय) यह क्या कह रहे हैं ?—महाराज ! मुझ नाचीज़ फ़रमाँबर्दार की शान में यह अलफ़ाज़ ! एक वफ़ादार वज़ीर की हैसियत से जो मैं कर रहा हूँ, वह मेरा फ़र्ज़ है कर्त्तव्य है ! (दूसरा जाम देते हुए) यह लीजिए ! राज-काज के झंझटों के लिए मैं हूँ आप नहीं ! राजा का कार्य आराम करना है ! इसलिए कि राज्य-पद तपस्या का फल होता है !

विजय०—(जोश के साथ) ग़लत ! वज़ीर साहिब ! आप महाराज को ग़लत रास्ते पर ले जा रहे हैं। राजा का कार्य आराम की ज़िन्दगी बिताना दुनियावी रंगीनियों में मस्त होकर जुल्मो-सितम ढाना, ग़रीब-प्रजा की पुकारों से बे-ख़बर हो जाना नहीं ! उसका कार्य है—देश की भलाई के लिए बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी करना,

अपनी औलाद की तरह प्रजा का प्रेम के साथ पालन करना। और उसके दुख-दर्दों को सुनने वाली आदत को न छोड़ देना! इसलिए कि राजा प्रजा का पिता होता है! उसकी रक्षा करना उसका कर्तव्य होता है।

रणधीर०—(गम्भीरता से) जागीरदार साहिब! मालूम होता है कि आपने नशा किया है। तभी महाराज के अपमान करने की ताक़त आजमाइश कर रहे हो! लेकिन याद रखिए, महाराज का अपमान हो, उसे मैं वर्दाश्त नहीं कर सकता! (महाराज को जाम देते हुए) लीजिए महाराज!

जागीरदार—(उपेक्षा से) अपमान ?—महाराज का अपमान मैं कर रहा हूँ—या आप ?—नशा मैंने किया है, या आपने ? ... आपकी आँखों पर स्वार्थ का चश्मा चढ़ा हुआ है, हृदय पर पाप की काली स्याही ने दखल जमा लिया है! इसीलिए ऐसा कह रहे हो वजीर साहिब! खुद सोचकर देखो—महाराज को शराब पिला पिला कर उन्हें कर्तव्य से विमुख करना, उनके भोलेपन से नाजाइज़ फायदा उठाकर शासन को जुल्मी, अन्यायी और लम्पटी साबित करना, अपने को सल्तनत का वफ़ादार होने का दम भरते हुए भी विश्वासघात करने से बाज न आना, यह सब महाराज का अपमान कौन कर रहा है ?

रणधीर०—(क्रोध से) चुप रहो! ज्यादह बातें बनाकर मेरे क्रोध को न भड़काओ!

जागीर०—(शान्ति से) मुझे चुप करना चाहते हो वज़ीर साहिब ! तो चुप कीजिए कलम चलने भर से कभी कोई चुप नहीं हो सकता। चुप कीजिए। मेरे मुँह को आप बन्द कर सकते हैं। धमकी और राज्य-सत्ता के बल पर नहीं, मेरी बातों का जवाब देकर ! वरना जब तक जुल्म रहेंगे, उनके खिलाफ आवाज़ उठती ही रहेगी ! न, भूलो ! न भूलो वज़ीर साहिब ! अहंकार के नशे में अपना कर्तव्य अपना फ़र्ज़ और अपनी ज़िम्मेदारी ! यह नशा शराब के नशे से भी खतरनाक, घातक और तकलीफ़देह है !

> नशा कुर्सी का है रंग दिल में,
> सुर्खी साथी लिए चढ़ा है।
> पनाह कैसे मिलेगी परवर !—
> नशे के ऊपर नशा चढ़ा है !

वज़ीर०—(उबल कर) बस, बहुत सुन चुका ! सुनने की भी एक मियाद होती है। महाराज की ही रोटियाँ खाकर महाराज को सरेआम अन्यायी, जुल्मी, सितमगर कहते तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

जागीर०—(दृढ़ता से) शर्म ?—शर्म आना चाहिए आपको। मैं नहीं समझता आप जब सुनने से घबराते हैं, तो सुनने का काम क्यों नहीं छोड़ देते ? क्यों नहीं राज्य वज़ीर बनने—रुपिया लेने के—इरादे को बदल देते ? क्यों एक बेवक्त वज़ीर अहसान के लिए प्रजा को मजबूर करते हैं ? सच्चे को कहने में शर्म नहीं, शान्ति मिलती है—वज़ीर साहिब ! और याद रखिए, मुँह की पहिचान है—सुनने से घबराना ! लेकिन मैं तुम्हारी

तरह महाराज की ही रोटियाँ खाकर महाराज के साथ विश्वासघात नहीं करता, उन्हें उनका सच्चा रास्ता बतलाने में कभी पीछे नहीं रहना चाहता! (महाराज की ओर देखते हुए) चाहता हूँ, महाराज अपने साथ होने वाले विश्वास-घात से वाकिफ हो जाए। चाहता हूँ, महाराज अपनी प्यारी-प्रजा की दर्दभरी आहों से बे खबर न रहें। चाहता हूँ, सल्तनत की बागडोर तुम जैसे दुराचारियों के हाथ में न रहकर स्वयं महाराज के हाथों में पहुँच जाए। चाहता हूँ महाराज गुप्त षड्यन्त्रों की मन्त्रणा से समय रहते खबरदार होजाए।

महाराज—(भोलेपन के साथ) ठीक कह रहे हो जागीरदार साहिब! मैं भी यही चाहता हूँ, कि अपनी सल्तनत में अमनोअमन की वारिश करने के लिए बादशाही-फर्ज पर गौर करूँ? लेकिन वजीर साहिब की बोतल और जाम की बारिष मेरे सारे अरमानों को भिगोकर ही नहीं छोडती—गलाकर बर्बाद कर देती है।

वजीर—(झुँझलाकर स्वत) उफ्! यह क्या हुआ जा रहा है?

'किया था .खूने जिगर से जिसको,
आबाद, गुलशन उजड़ रहा है।
इधर बनाने की सोचता हूँ—
उधर बना भी बिगड़ रहा है॥'

(महाराज से) जहाँपनाह! किधर ध्यान दे रहे हैं? ... जागीरदार साहिब का मक़सद आपकी भलाई के लिये नहीं, बल्कि देश में बगावत की आग भड़काकर सल्तनत को नष्ट करने का है। जो महाराज के सामने ही इतनी बेअदबी से पेश आ सकता है, वह पीछे क्या

नहीं करता होगा ? "यह देश की हिमायत किसी राज से खाली नहीं, ग़ौर कीजियेगा, महाराज !

महाराज—(भोलेपन के साथ) अच्छा ! यह बात है ? तो लाओ एक जाम और !

वज़ीर—(जाम देते हुए) बेशक यही बात है !

जागीर—(डपटकर) चुप रहो चाटुकार ! तुम जैसे नारकीय कीट देश की भलाई, राजा की बहबूदी का क्या निर्णय कर सकते हैं। जो रातों दिन प्रजा की—ग़रीब-प्रजा की—बहू बेटियों की इज्ज़त हड़प करने की ताक में बाज़ की तरह आँखें गड़ाये रहते हैं ! जो जिस मालिक की बदौलत अपने को हिमालय की चोटी पर खड़ा देख सके उसी की जड़ काट डालने में अहसान फ़रामोशी करते नहीं सकुचाते ! देश की हिमायत वही कर सकता है, जिसके हृदय में देश के लिए जगह हो वह हो, तुम नहीं !

वज़ीर—(खीजकर) बस बन्द करो अपनी ज़ुबान ! बहुत बढ़ चुके—जागीरदार साहिब ! ख़याल करना चाहिये—आप किसके आगे, क्या बातें कर रहे हैं ? जानते हो, इसका अन्जाम क्या हो सकता है ? आख़िर मुझे भी कुछ अधिकार है।

जागीर—(रोष के साथ) अधिकार ? न कहिए उसे अधिकार ! वह जुल्म है, पशु-बल है ! अधिकार है मुझे—देश के बच्चे-बच्चे को अधिकार है, कि वह अधिकार की आड़ में छिपी रहने वाली—खूँरेज़ी की ताक़त का मज़बूती के साथ मुक़ाबिला करे। उसके ख़िलाफ़ जिहाद खड़ा करे, और अपने प्यारे राजा को सच्चा सरपरस्त—योग्य

शासक होने का दुनिया में मौक़ा दे।...मैं जानता हूँ वजीर साहब! मेरी सच्ची किन्तु कड़वी बातों का क्या नतीजा हो सकता है—सिर्फ़ मौत! लेकिन मौत का डर मुझे सच्ची बातें महाराज के कान तक पहुँचाने से नहीं रोक सकता।

या तो .ज़ुल्मों का जहाँ से नाम ही टल जायगा!
या शहीदों की चिता मे आस्माँ जल जायगा!!
या तो हथकड़ियाँ करेंगी देशभक्तों से दुलार!
या खुला होगा जमाने भर को आज़ादी का द्वार!!
या तो संकट देश का मैं कर सकूँगा पाश-पाश!
या तुम्हारी ठोकरों में गिर पड़ेगी मेरी लाश!!

वजीर—(उपेक्षा की हँसी में) मौत? मौत को हँसी न समझिए जागीरदार साहिब!

मौत वह शै है जहाँ में जिसकी सानी का नहीं।
मौत से यों जूझ पड़ना काम आसानी का नहीं॥
सख़्त मुश्किल, ख़ून दे देना वतन के वास्ते—
.ख़ून है वह ख़ून है, है .ख़ून पानी का नहीं।

जागीर—(तीव्र-स्वर में) भूलते हो, भूलते हो! भलाई और नेकी की राह में कदम रखने वाला कभी मौत से नहीं डरता! उसका .ख़ून सेवा धर्म के लिए पानी बन जाता है!

वही पानी बुझाता है सितम, .ज़ुल्मों के शोलों को।
कि सेहत वह ही करता है गरीबों के फफोलों को॥
वही पानी है जो चढ़ता है तलवारों की धारों पर—
रहम जिसने नहीं सीखा दिखाना गुनहगारों पर॥

वज़ीर—(हँसकर) बहुत देख लिए, खून को पानी की तरह बहाने वाले देश-भक्त ! गर्ज-गर्ज कर राह जाने वाले बादल, दुनिया को मुट्ठी-भर आशा दिला सकते हैं, डरा सकते हैं। लेकिन उसकी प्यास नहीं बुझा सकते। जागीरदार साहब देश की वकालत कर, अपनी पद-मर्यादा को मिट्टी में न मिलाइए। ऐसा करना बुद्धिमानी न होगी।

जागीर—(गम्भीरता से) न हो बुद्धिमानी ! अगर देश-द्रोही बन कर मुझे इससे भी अधिक गौरव मिले, आपकी नज़रों में बुद्धिमान बनूँ तो वह मुझे मंजूर नहीं। मैं मूर्ख की तरह देश के नाम पर—धर्म की समर भूमि में हँसते-हँसते प्राण चढ़ाने को ज्यादह पसन्द करता हूँ !" ... वज़ीर साहिब ! आप नहीं, समझ सकते कि धर्म और देश क्या चीजें हैं ! आपकी आत्मा को बुराइयों की स्याही ने काला कर दिया है, आपकी समझ को स्वार्थ की चादर ने ढाँक रखा है। भोले महाराज को अपनी चालों में फँसाकर सिंहासन अपने कब्जे में कर लेने की मनौती ने तुम्हें पागल बना दिया है। लेकिन याद रखिये—जब तक एक भी देश का सच्चा-सेवक मौजूद रहेगा—आपकी मनमानी आपसे दूर रहेगी।!

वज़ीर—(दाँत पीसते हुए) चुप रहो ! चुप रहो ! यह मेरी तौहीन ही नहीं, महाराज के दिल में शक डालने का तरीका शुरू कर रहे हो ! इसे मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं देता हूँ—अगर अपनी जान-बख्शी चाहते हो तो चुप रहो !

जागीर—(व्यंग के साथ) चुप रहूँ, इसलिए कि मेरी जान बच जाय ! चुप रहूँ इसलिए कि देश की सारी जिम्मेदारी

लुटेरे के हाथ में पहुँच जाय। जो अपनी हैवानी-ताक़त से प्रजा की सुख-शान्ति को जलाकर राख करदे। नहीं, यह मुझसे न होगा! वजीर साहब! यह बदक़िस्मती है कि मेरे पास एक ही जान है, अगर सौ जानें भी होतीं तो वह सच्चाई के मैदान में निछावर कर देता।

न समझो इसको तुम 'मरना' न कोई इससे घबराये!
अमर बनने के इस ज़रिए को अपने काम में लाए!!
बताओ इससे बढ़कर और क्या खुशक़िस्मती होगी!
है जिसकी चीज उसके काम में .क़ुर्बान हो जाये!!

(महाराज से) महाराज, सावधान हो जाइए। अब अधिक दिनों तक यह गफ़लत, यह शराब का दौर क़ायम नहीं रह सकता। वज़ीर साहब की चापलूसी-बातों से दूर हटकर अपनी आँखों स अपनी प्रजा को देखने की कोशिश कीजिये। नहीं, यह विश्वासघात की ज़हरीली आग सल्तनत को भस्म कर देगी।

नशे के दौर ने इस वक्त पर्दा दिल पै डाला है!
हटेगा तब कहोगे आस्तीं में साँप पाला है!!

महाराज—(सरलता के साथ) क्यों? कैसे?—क्या रहस्य है जागीरदार साहिब!

जागीर०—(प्रेम के साथ) सुनना चाहते हैं महाराज! तो सुनिए—आपका एक पुत्र था—राज्य का उत्तराधिकारी, देश की आशा! और.....!

वज़ीर—(क्रोध में भर कर) बस! तो ' लो ''अपनी देश-भक्ति का इनाम! (पिस्तौल से शूट कर देता है। महाराज जाम हाथ में लिए सिंहासन से उतर पड़ते हैं। जागीर-

वार जमीन पर गिर पड़ता है। फिर भयभीत होकर कराहता है)।

आमीर०—(वेदनात्मक स्वर में) आह !…आह…!!

महाराज—(आश्चर्य से) खून ?—

आमीर०—(जोश के साथ) "खून नहीं, महाराज—मारा ! मारा ! सल्तनत का मारा ! देश की शान्ति का मारा !

यह है वह खून जिसकी आग से सूरज भी जल जाए।
यह है वह खून जिसकी आह से पत्थर पिघल जाए।
यह है वह खून जिसकी मार दुनिया में प्रलय लाए—
यह है वह खून जिससे सल्तनत की नींव हिल जाए।

यह हत्या यह जुल्म, यह सत्य का खून खाली नहीं जायेगा—वजीर साहिब ! तुम्हारे विश्वासघात का दुनिया में डंका पीट कर ही रहेगा। तुम अकेला मुझे मार कर अपने काले कारनामे को छुपा नहीं सकते। वह सौ मुँह होकर तुम्हारे कर्मों के पर्दे फाड़ देगा ? सत्य की आयु यही होती है—वह तुम्हारे जैसे नापाक हाथों से नहीं मर सकता ?

बन रहे दोनों अमर हैं, अपने-अपने काम पर।
तुम सितम की शान पर और मैं वतन के नाम पर।।

आह ! आह !! महाराज मेरी कामना है—आखिरी कामना है—कि मेरी मौत आपकी आँखें खोल दे। अपने पुत्र के—" "! अपने पुत्र के…" !

वजीर—(क्रोध में) मरते-मरते अपनी हर्कत से बाज नहीं आता—ठहर ! (दूसरा निशाना मार कर खत्म कर देता है। इसी समय महाराज के हाथ से जाम गिर कर चूर-चूर हो जाता है।)

महाराज—(गम्भीरता से) तोड़ दिया। ... तोड दिया—वह आईना भी तोड़ दिया जो मुझे अपनी साफ़ सूरत बतला रहा था। ... ओफ़् ज़ुल्म ...। ज़ुल्म। मेरी आँखों के सामने एक बे-गुनाह का ख़ून ?

वज़ीर—(बडे प्रेम से) नहीं, महाराज। इसका नाम ज़ुल्म नहीं,—राज नीति है। राज काज इसी तरह चलता है। आप नहीं समझ सकते, इसके लिए एक नहीं, सैकडों मनुष्यों का ख़ून बहा कर सल्तनत की नींव मज़बूत की जाती है। नहीं तो देश में विद्रोह की आग भडक उठती है।

महाराज—(भोलेपन के साथ) अच्छा ? यह बात है ?—तो लाओ एक जाम और।

(वज़ीर जाम भर कर देता है, महाराज पीते हैं—सिंहासन पर विराजे हुए)।

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—श्मशान-भूमि। नर मुण्ड, हड्डियाँ जहाँ-तहाँ पड़ी हैं। एक चिता जल रही है। ... चारो ओर शान्ति।]—
[सुनीता का भागते हुए आना]।

सुनीता—(रोते हुए) पिता जी। पिता जी॥ कहाँ गए मुझे अकेला छोड़ कर ? मुझ अभागिनी को अनाथ बना कर ? आह। इस भयावने संसार में कौन है मेरा ? किसको अपना दुख सुना कर हृदय की आग को हल्का करूँ ? (रोती है) ओह। देशसेवा के

होम-कुण्ड में, सचाई और भलाई के अनुष्ठान में दे दिया बलिदान! न सोचा कि प्यारी पुत्री—सुशीला किस तरह रो-रो कर—अन्यायी संसार में—दिन बितायेगी?" कौन उसके करुण-क्रन्दन पर ध्यान देकर धैर्य धारण करायेगा? (चिता उठती लपटों को देखते हुए) जला रही हो चिते! जला दो जलाओ,—पिता जी के शरीर को नहीं, नहीं, मेरे हृदय को भी जला दो! उसके साथ भी अन्याय हुआ है, वह भी मर चुका है। उसे भी जला कर राख करदो! (रुके हुए) "ओ, धक-धक कर धधकने वाली आग! तू भी इसी संसार में पलती है तुझे भी निरपराधों को जलाने में आनन्द आता है। जो उठ नहीं सकता, बोल नहीं सकता उसी बेचारे मुर्दे को तू पेट में उतारने के लिए ये लम्बी-लम्बी जीभें निकाल कर दौड़ पड़ती है! और जो अन्याय कर रहे हैं! गरीबों, बेकसों को मौत के मुँह में ढकेल रहे हैं! देश की बहू-बेटियों का सतीत्व लूटने में पाशविक आनन्द ले रहे हैं—उन्हें तू राख नहीं करती! उन्हें अपने पेट का आहार नहीं बनाती। क्योंकि वे सबल हैं, ताकतवर हैं,—वे तुझे नाश कर सकते हैं! आह!—मेरे रोने! मेरे पिता जी को बचा लो! "पिता जी! पिता जी एक बार तो बोलो—सुशीला म म स्के न स्के!"

(रोते-रोते गिर पड़ती है। उसी समय दूर से गाने की आवाज आती है। वह उसे सुनती हुई धीरे-धीरे उठती है—
नैपथ्य की ओर देखते हुए! गाने की आवाज क्रमशः
तेज होती जाती है। और तभी एक वृद्ध
साधु गाते हुए प्रवेश करते हैं)।

—गाना—

मन, मूरख क्यों तू रोता है ?
जो होना है, वह होता है !
क़िस्मत के हैं खेल, खिलाड़ी !
रची उसी ने सब फुलवाड़ी !!
एक चिता में ख़ाक बन रहा—
एक पलँग पर सोता है। मन मूरख०
रोने में क्या है, मतवाले।
कष्टों को हँसकर अपनाले।
'भगवत' साहस लेता मन में—
विजय-बीज वह बोता है ! मन मूरख०

—o—

साधु—(मधुरता से) बेटी ! तू कौन है ? क्या दुख हुआ है—तुझे ? किस की चिता के पास रो रही हो ?

सुनीता—न पूछिए गुरुदेव ! मेरे दुखों का इतिहास ! समझ लीजिए, मैं एक अनाथ हूँ। अन्याय की वेदी पर अपने सुख को चढ़ा चुकी हूँ। इसी चिता में जला जा रहा है—मेरा सुख ! बचाइए बचाइये, न जलने दीजिए उसे ! नहीं, मेरे दुख का ठिकाना न रहेगा ! बिना पिताजी के कौन मुझे जुल्मी-दुनिया की शिकार बनने से बचा येगा ?" (रोती है। उसी वक्त एक गेरुआ वस्त्र धारी नौजवान-साधु आकर, गुरुदेव से अभिवादन-पूर्वक निवेदन करता है।)

नौ० सा०—गुरुदेव ! पारणा तैयार है !

साधु—(तमक कर) कैसा पारणा ? जब देश की सुकुमारियाँ इस तरह अन्याय से पीड़ित, बिलख-बिलख-कर रो रही हैं। निरपराधों-बे कुसूरों की चिताएँ धू-धू कर जल

होम-कुण्ड में, सचाई और भलाई के अनुक्रम में है दिया बलिदान ! न सोचा कि प्यारी पुत्री—सुनीता किस तरह रो-रो कर—अन्यायी संसार में—दिन बितावेगी ?......कौन उसके करुण-क्रन्दन पर ध्यान देकर धैर्य धारण करायेगा ? (चिता उठती लपटों को देखते हुए) जला रही हो चिते ! जला दो जलाओ,—पिता जी के शरीर को नहीं, नहीं, मेरे हृदय को भी जला दो ! उसके साथ भी अन्याय हुआ है वह भी मर चुका है। उसे भी जला कर राख करदो ! (रोते हुए)......ओ रह-रह कर भभकने वाली आग ! तू भी इसी संसार में रहती है तुझे भी निरापराधों को जलाने में आनन्द आता है। जो उठ नहीं सकता बोल नहीं सकता उसी बेचारे मुर्दे को तू पेट में उतारने के लिए ये लम्बी लम्बी जीभें निकाल कर दौड़ पड़ती है ! और जो अन्याय कर रहे हैं। गरीबों, बेकसों को मौत के मुँह में ढकेल रहे हैं। देश की बहू-बेटियों का सतीत्व लूटने में पाशविक आनन्द ले रहे हैं।—उन्हें तू राख नहीं करती ! उन्हें अपने पेट का आहार नहीं बनाती। क्योंकि वे सबल हैं, ताकतवर हैं,—वे तुझे नाश कर सकते हैं ! आह !......मेरे रोने ! मेरे पिता जी को बचा लो ! पिता जी ! पिता जी एक बार तो बोलो—सुनीता से न रूठो न रूठो !......

(रोते-रोते गिर पड़ती है। उसी समय दूर से गान की आवाज आती है। वह उसे सुनती हुई धीरे-धीरे उठती है—
नैपथ्य की ओर देखते हुए ! गाने की आवाज क्रमशः तेज होती जाती है। और तभी एक वृद्ध साधु गाते हुए प्रवेश करते हैं)।

—गाना—

मन, मूरख क्यों तू रोता है ?
जो होना है, वह होता है !
क़िस्मत के हैं खेल, खिलाडी !
रची उसी ने सब फुलवाडी !!
एक चिता में खाक बन रहा—
एक पलँग पर सोता है। मन मूरख०
रोने में क्या है, मतवाले।
कष्टों को हँसकर अपनाले।
'भगवत्' साहस लेता मन में—
विजय-बीज वह बोता है ! मन मूरख०

—o—

साधु—(मधुरता से) बेटी ! तू कौन है ? क्या दुख हुआ है—तुझे ? किस की चिता के पास रो रही हो ?

सुनीता—न पूछिए गुरुदेव ! मेरे दुखों का इतिहास ! समझ लीजिए, मैं एक अनाथ हूँ। अन्याय की वेदी पर अपने सुख को चढ़ा चुकी हूँ। इसी चिता में जला जा रहा है—मेरा सुख ! बचाइए बचाइये, न जलने दीजिए उसे ! नहीं, मेरे दुख का ठिकाना न रहेगा ! बिना पिताजी के कौन मुझे जुल्मी-दुनिया की शिकार बनने से बचायेगा ?' (रोती है। उसी वक्त एक गेरुआ वस्त्र धारी नौजवान-साधु आकर, गुरुदेव से अभिवादन-पूर्वक निवेदन करता है।)

नौ० सा०—गुरुदेव ! पारणा तैयार है !

साधु—(तमक कर) कैसा पारणा ? जब देश की सुकुमारियाँ इस तरह अन्याय से पीड़ित, विलख-विलख कर रो रही हैं। निरपराधों-बे क़ुसूरों की चिताएँ धू-धू कर जल

रही है। देश का वायु-मण्डल हाहाकारों से भर रहा है। तब उसी देश और समाज के अन्न से पलने वाले साधु मौज से पारणा करते रहें—कितने शर्म की बात है—यह! रहने दो प्रकाश! आज मैं भजन न करूँगा।

नौ० सा०—(सुनीता की ओर मर्म-भरी नज़रों से देखते हुए! वृद्ध साधु से) गुरुदेव!

वृ० सा०—(सुनीता से) बेटी! तुम्हारे पिता का नाम?… किसने उसका वध किया?…कौन है वह नराधम?

सुनीता—(लम्बी साँस लेकर) विजयसिंह जागीरदार की बेटी हूँ मैं। सच्चाई ने उनको मारा! देश प्रेम ने उन्हें निर्जीव किया! और वज़ीर रणधीरसिंह ने उन्हें क़त्ल कर मेरी अरमानों की दुनिया को उजाड़ रखा। मुझे अनाथ बना दिया!

प्रकाश—(सुनीता की ओर देखते हुए वृद्ध साधु से) गुरुदेव!

सुनीता—(आँसू पोंछते और आकाश की ओर देखते हुए) आह! परमात्मा अगर इस हृदय को मजबूत बनाया होता, इन हाथों में ताक़त दी होती—ताकि मैं अपने पिता के—बे क़सूर पिता—के घातक नराधम वज़ीर से बदला ले सकती तो कितना अच्छा होता! मेरे हृदय की आग तब कितनी ठण्डी हो जाती! मगर आज एक ओर अबला का हृदय है—दूसरी ओर बेरहम वज़ीर की शैतानी ताक़त! किस तरह मुक़ाबिला हो सकता है?…

प्रकाश—(व्याकुलता के साथ) गुरुदेव!… गुरुदेव!! मुझे आज्ञा दीजिए, कि मैं इस अबला के—पिता के—खून का बदला लूँ! देश के हाहाकारों को रोकने के लिए क़दम बढ़ाऊँ!…

है रखता जिस्म में दिल को, जो दिल मे जोश रखता है !
मदद आता है वह सब की, जुबाँ खामोश रखता है !!
मिली है इसलिए ताक़त, लगे गैरो के कामों में !
मिटेंतो वह सचाई पर, वतन के कारनामों में !!

गुरुदेव—(प्रसन्न होकर) शाबाश ! मेरे प्रकाश—! सच कह रहे हो !

भलाई, देश सेवा से ही जीवन, ज्योति भरता है !
जो मरता देश के ऊपर, उसी पर देश मरता है !!
है वीरों की यही शोभा, जो सब के काम में आए !
पराई मौत से लड़ने को सीना तान कर जाए !!

मगर ··प्रकाश ! तुमको मैं इतनी कड़ी आज्ञा नहीं दे सकता। देश की समर-भूमि को अन्याय की ज्वाला ने भयंकर बना दिया है। जहाँ पर धर्म और न्याय दोनों का .खून किया जा चुका है, जहाँ पर स्वार्थ और ऐशोअसरत की पूजा की जा रही है, जहाँ की राज्य-सत्ता मनमाने जुल्म करने में मशग़ूल हो रही है ! वहाँ तुम क्या कर सकोगे, प्रकाश ?—

प्रकाश—(जोश के साथ) क्या कर सकूँगा ?

कर सकूँगा देश की क़ुर्बानियों की इन्तहा !
कर सकूँगा मैं वतन को जुल्मों-ज़ेरों से रिहा !!
कर सकूँगा देश को हैवानियत से होशियार !
गर रहा गुरुदेव का साया मेरे सर पर सवार !!

गुरुदेव—(प्रेम के साथ) लेकिन प्रकाश !

प्रकाश—(बात काट कर) न रोकिए गुरुदेव ! देश के पवित्र-पथ पर आगे बढ़ने से !

जिसे हिम्मत ने बढ़ाया, वह ऊँचा चढ़ नहीं सकता!
बढ़ाने वाला ही रोके तो आगे बढ़ नहीं सकता!!

मैं मानता हूँ—गुरुदेव शासक-वर्ग की दशा आज मदोन्मत्त हाथी की तरह हो रही है, जो अपने से निर्बलों को कुचल डालने में आनन्द लेता है। लेकिन न भूलिए एक शक्ति—एक व्रत—फिर भी बाकी रह जाती है—जो उसके मदों को दूर करने के लिए—काफी हो सकती है।

गुरुदेव—(आश्चर्य से) क्या बगावत?—विद्रोह?

मकरन्द—(गंभीरता से) नहीं!...जुल्मी-शासक उसे इसी नाम से पुकारता है! मगर उसे बगावत, विद्रोह कहना उतना ही गलत है, जितना रात में धूप का निकलना! अपने नागरिक-अधिकारों को माँगना, जुल्मी-सितम के खिलाफ आवाज उठाना बगावत नहीं देश-प्रेम है! जिसके आगे शक्ति-शाली से शक्ति-शाली राज-सत्ता घुटने टेक देती है!

गुरु०—अवश्य! लेकिन क्या जानते हो मकरन्द? देश-प्रेम कितना खतरनाक-काम है! जलती हुई आग में कूद पड़ना, तलवारों की धारों पर सोना जिसके सामने आसान बात मानी जाती है।

सुशीला—(भय से) सरासर मौत! (पिता की ओर देखते हुए)—

देश का ही प्रेम जलता इस चिता की आग में।
मैं अनाथा बन गई हूँ—देश के अनुराग में॥
मुल्क-खिदमत में उलझना वीरता का काम है।
देश-सेवा ही असल में मौत का उपनाम है॥

प्रकाश—(तैश के साथ) सच-कुछ ! लेकिन जिसके हृदय में देश के लिए सच्ची भक्ति है, जो अपने देश-वासियों की रोती हुई आँखें देख कर विकल हो चुका है, जिसकी आत्मा में एक तूफान उठ खड़ा हुआ है ! वह देश-सेवक विघ्नों को देख कर पीछे नहीं लौटता ! मौत उसे नहीं डरा सकती—

समझते हैं जो हथकड़ी को जेवर !
न जिसके दिल में जरा भी डर है !
जिसे दुनिया कहती है जेलखाना—
यही देश-भक्तों का आज घर है ॥
निकलती मुसीबतजदों की न आहें—
निकलता है तो, बस, कलम-ए-हक !
भले ही उसको चिता जला दे—
मगर नाम उसका सदा अमर है ॥

बस, गुरुदेव ! यही अभिलाषा है कि आप खुले मन से अपने प्यारे शिष्य को आशीर्वाद दें—ताकि वह विघ्न बादलों को ठेलता हुआ कामयाबी हासिल करे।

गुरु०—(प्रेम के साथ) प्रकाश ! तुम्हारी उचित अभिलाषा मुझे मजबूर करती है, लेकिन हृदय-प्रेम से अन्धा-हृदय-रोकना चाहता है !

इधर है प्रेम की आँधी उधर कर्तव्य-जीवन है !
किसे तरजीह दूँ दिल में समाई एक उलझन है ॥

प्रकाश—(घुटने टेक कर) न भूलिए गुरुदेव ! पुत्र प्रेम से बढ़ कर, देश प्रेम है !

जहाँ माँ-बाप का रावना जहाँ में भाग्य शाली है।
जिन्होंने करदी देश कर देश-हित को गोद खाली है।

गुरु—(प्रकारा के सिर पर हाथ रख कर।) आओ बेटा! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें। आज से 'आश्रम का भार तुम्हारे सिर सौंप कर मैं प्रभु-भजन के लिए जाता हूँ।

प्रकारा—(हाथ जोड़ कर उठता है फिर चिता से राख लेकर) इस अन्याय की वदी पर बलिदान होने वाले वीरात्मा की राख लेकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जब तक इस के घातक से बदला न लूंगा—माथे पर त्रिपुण्ड न लगाऊंगा। (माथे का त्रिपुण्ड पोंछ देता है)।

गुरु—(प्रफुल्लित होकर)
धन्य हो इस वीरता की भावना का मान हो!
शत्रुओं का अन्त हो और देश का कल्याण हो!!
(गुरुदेव का जाना)

(पटाक्षेप)

चौथा-दृश्य

[स्थान—मुन्ना-वेश्या का घर! मनोहारी सजावट! मुन्ना गाती है, उसी समय वजीर रणधीरसिंह आते हैं।]

—गाना—

मुन्ना—मेरे जोबन की आओ बहार लूट लो!
इस रंगीले दिल का सिंगार लूट लो!!

वजीर—(आकर) ओठों में शरबत आँखों में मस्ती।
जिसने बनाई है, दिल की बस्ती!!

सुधा—आओ वस्ती में सौदा उधार लूट लो।
मेरे यौवन की प्यारे वहार लूट लो॥

वजीर—प्यारी-सी सूरत सामने आई।
आँखों में प्रेम की चादनी छाई॥

सुधा—आओ ओठों से ओठों का प्यार लूट लो।
मेरे ......

(दोनों मस्ती के साथ कुर्सियों पर वैठते हैं)

सुधा—(प्रेम के साथ) आज इतनी देर से तशरीफ लाने की वजह ?

वजीर—(मेज पर से सिगरेट उठाकर सुलगाते हुए) वजह ?—क्या वजह वतलाऊँ जानेमन !

वह वजह जिसकी वजह से मैं परेशानी में था !
गो मैं था सूखे में, लेकिन दिल मेरा पानी में था !!

सुधा—(कुछ चिड कर) वाह ! वाह ! अजीव वाक़या है ! न जिसका सिर न पैर ! ...

वजीर—(हँस कर) तुम नही समझ सकतीं—सुधा !

जिसके दिल की वात है उसको फक़त पहिचान है !
वात गूँगे की समझना गूँगे को आसान है !!

सुधा—(कटाक्ष के साथ) हूँ ऊँ ! लेकिन समझाने पर तो जानवर भी समझ लेते हैं। यह न कहो कि समझाना ही नहीं। आज मालूम हुआ कि मुझ से भी पर्दा होने लगा है।

मेरी गलती थी कि मैंने दिल को पहिचाना नहीं।
सिर्फ मतलव था उसे उल्फत का दीवाना नहीं॥

वजीर—(प्यार से) ख़फ़ा न हो ओ—प्यारी ! तुम से क्या छिपा सकता हूँ ?

उन्हीं माँ-बाप का रुतबा जहाँ में मान्य आली है।
जिन्होंने अपनी हँस कर देश-हित का गोद खाली है।

गुरु—(प्रताप के सिर पर हाथ रख कर ।) आओ बेटा ! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें। आज से 'आश्रम' का भार तुम्हारे सिर सौंप कर मैं प्रभु-भजन के लिए जाता हूँ।

प्रताप—(हाथ जोड़ कर उठता है फिर पिता से आज्ञा लेकर) इस अन्याय की वेदी पर बलिदान होने वाले वीरात्मा की राख लेकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जब तक इस के घातक से बदला न ले लूँगा—माथे पर त्रिपुण्ड न लगाऊँगा। (माथे का त्रिपुण्ड पोंछ देता है)।

गुरु०—(प्रफुल्लित होकर)
धन्य हो इस वीरता की भावना का मान हो !
शत्रुओं का अन्त हो और देश का कल्याण हो!!
(गुरुदेव का जाना)

(पटाक्षेप)

चौथा-दृश्य

[स्थान—सुधा-वेश्या का घर ! मनोहारी सजावट ! सुधा गाती है, उसी समय वज़ीर रणधीरसिंह आते हैं।]

—गाना—

सुधा—मेरे यौवन की आओ बहार लूट लो !
इस रंगीले दिल का सिंगार लूट लो !!

वज़ीर—(आकर) ओठों में शराब आँखों में मस्ती।
जिनसे बसाती है, दिल की बस्ती ॥

जंगली—(नोट उठाकर) जी सरकार !

वजीर—जल्दी लौटना !

जगली—अभी लीजिए, बाक़ायदा गया नहीं कि आया। (जाता है)

वजीर—(सुधा से) बस, इस की फर्माबरदारी ही वह चीज है, जो अब तक निभाये जा रही है, वरन शूट कर देने क़ाबिल है।

सुधा—शूट ! (हँस कर) गरीबों को शूट कर देना तो तुम्हारे लिए हँसी-खेल है !

वजीर—(जोर से हँसकर) ख़ूब ? यह चुटकी ? "सुधा ! आज देर से आने की वजह भी एक शूट करना ही है ! लेकिन तुम यह सुनकर ताज्जुब करोगी कि मारे जाने वाला कम्बख्त गरीब नहीं, एक बड़ा जागीरदार था ! महाराज का मुँह-लगा मुसाहिब था !

सुधा—(एकटक देखते हुए) क्या मैं पूछ सकती हूँ—उसका कुसूर ?

वजीर—(दूसरी सिगरेट जलाते हुए) तुम नहीं समझोगी उसका क़ुसूर ! और कुसूर-उसूर क्या ? वह मेरा काँटा था ! वह मेरे रास्ते की ज़बर्दस्त ठोकर था ! उसे बगैर शूट किए मैं अपने अरमानों की दुनिया नहीं बसा सकता था !

जगली—(प्रवेश कर) लीजिए सरकार ! बाक़ायदा दो-बोतलें तैयार हैं ! [बोतलें खुलती हैं, जाम, भर-भर कर सुधा और वजीर दोनों पीते हैं। जगली एक ओर खड़ा रहता है।]

वजीर—(मौज के साथ)।

कर दिया अब मस्त मुझ को स्वर्ग के पैगाम ने !
यह सुधा है जाम में और तुम सुधा हो सामने ॥

छिप नहीं सकता तमाशा जैसे काली रात से।
क्या छिपा सकता है कोई पानी को बरसात से॥
जिस्म हूँ मैं दिल हो तुम, इस दिल की हो बेगम तुम्हीं—
ग़ैर मुमकिन दिल अलग हो जाय दिल की बात से।

सुधा—(प्रेम से) तो कहिए न वज़ीर साहिब! आज देर से आने का क्या सबब हुआ? आपको मालूम रहना चाहिए कि आपके न आने तक मैं कितनी बेकल और परेशान रहा करती हूँ।

कलेजा मुँह को आता है बराबर आह चलती है।
कि आँखें मेंह बरसाती हैं दिल में आग जलती है॥

वज़ीर—(लापरवाही से) अरे, वाह! जंगली भी तो मेरे साथ आया था कहाँ रह गया—कमबख़्त! (ज़ोर से) ऐ जंगली!

जंगली—(नेपथ्य से) जी सरकार! (आता है)

वज़ीर—(घुड़क कर) अबे सरकार के बच्चे! रह कहाँ गया था?

जंगली—बाअदब बाहर खड़ा था—सरकार!

वज़ीर—बाहर क्यों खड़ा था?—क्या पहरा दे रहा था?

जंगली—नहीं सरकार! इस घर का दर्वाज़ा तो बाक़ायदा खुला ही रहता है, पहरे की क्या ज़रूरत!

माल है दौलत है पर कुछ भी नहीं ताला नहीं।
जो भी आया वह ही मालिक और घर वाला नहीं॥

सुधा—(मुसकिराकर) हिस्! देखा अपने जंगली का जंगलीपन?

वज़ीर—(सुधा से) क्या कहूँ? इस जंगली के मारे तो खुद मैं जंगली हुआ जा रहा हूँ। (जेब से नोट निकाल कर जंगली की ओर फेंकते हुए) ले शराब की बोतलें तो ला!

मेरा और दस्तखत उसके हैं। लेकिन कल, जानती हो क्या होगा ?

सुधा—(भोलेपन के साथ) क्या होगा ?

वजीर—(जाम उठाते हुए) मेरे एक इशारे पर सल्तनत में आग और मुस्कराहट से अमन बरस उठेगा।

जगली—(स्वागत) खा रहे हो मन के लड्डु, कौन इसमें फ़ायदा ?
सामने आ जाये जो-कुछ, है वही बाक़ायदा !!

सुधा—(प्रेमोन्मत्त होकर) तुम कितने अच्छे हो—देवता !

वजीर—(जोर से हँसकर) मैं देवता ? देवता नहीं पुजारी हूँ—
प्रेम की देवी हो तुम, इस प्रेम-मन्दिर की सुधा !
मैं पुजारी हूँ तुम्हारे प्रेम के परसाद का !!

जगली—(स्वगत) भूल ! भूल रहे हो—
यह वह घर है जहाँ पर रूह तक नापाक़ होती है।
यह वह घर है जहाँ इन्सानियत भी खाक़ होती है।
न रहता क़ौम का फ़िर्का, नहीं मजहब की पाबदी—
यह वह घर है जहाँ पर आबरू हल्लाक़ होती है।
न समझो प्रेम की पूजा यहाँ चांदी की पूजा है—
यह वह घर है जहाँ उल्फ़त बाला-ए-ताक़ होती है।

सुधा—(प्रेम से) नहीं मेरे राजा !
अगर हो तुम जो पैमाना तो मैं रंगीन—पानी हूँ !
किसी की जिंदगी तुम हो तो मैं उसकी जवानी हूँ॥

जंगली (स्वगत) जवानी ? जवानी नहीं हो तुम !—
हो तुम वह आग जो रहती है मिलकर सर्द-पानी में।
जो लासानी कही जाती है अपनी नागहानी में॥
यही आते हैं जल-मरने, दफ़न कर अपनी हस्ती को—
जवानी का मजा जो चाहते हैं नादानी में॥

बंगाली—(स्वगत)—

न भूलो स्वर्ग के सुख पर, भयानक मौत के दिन हैं!
सुधा समझे हो तुम जिसको, व दोनों ही हलाहल हैं!

सुधा—(आम खासी करते हुए) प्यारे! कितना सुरा जिस दिन होगा जब तुम देश के बादशाह होगे! दुनिया की सारी गर्दनें तुम्हारे कदमों में झुकेंगी—सिजदा करेंगी!

वजीर—(प्रेम से तन्मय होकर) और तुम? तुम बनोगी उस बादशाह की प्यारी-बेगम! जो आज एक वेश्या के नाम से मशहूर है वह एक खूबसूरत बादशाह की बेगम बनकर सल्तनत पर हुकूमत चलायेगी! ह ह ह ह (हँसता है)

सुधा—(उदासी के साथ) मगर कब तक? अब देरी नहीं गवारा होगी—प्यारे! इस तरह इन्तजार में ही दिन बीतते अच्छे नहीं लगते!

वजीर—(आस बढ़ाते हुए) सब्र करो सब्र करो मेरी दिलरुबा! वह दिन अब दूर नहीं! जब राज-मुकुट मेरे सिर पर होगा मैं बादशाह बनूँगा और तुम्हें बनाऊँगा बेगम! यकीन करो मेरी बात पर तुम्हें महारानी बनाकर ही रहूँगा—जानेमन!

सुधा—(खुश होकर) लेकिन महाराज की ताकत!—

वजीर—(दृढ़ता के साथ) महाराज की ताकत मेरी ताकत के आगे खाक है! कुछ नहीं कर सकती—वह! भोला—बेवकूफ—महाराज मेरी बात में जरा भी दस्तन्दाजी नहीं कर सकता! मैंने अपने रास्ते के एक-एक काँटे को उखाड़ कर फेंक दिया—लेकिन वह यूँ [illegible] कर चुका! आज फौज मेरी और खजाना उसकी है! [illegible]

प्रकाश—महाराज ? आज मैं महाराज नहीं, देश-दूत बनकर तुम्हारे सामने आया हूँ। एक नया सन्देश सुनाने के लिए—नया रूप रखकर आ मौजूद हुआ हूँ। मेरे साधु-जीवन का स्वप्न-भंग हो चुका, मैं आज जाग गया हूँ—आज जागरण का दिन है। चाहता हूँ कि तुम लोग भी जाग जाओ। समय की आवश्यक माँग का सन्मान करो। समझ सको कि इस तरह भीख माँग-माँग कर पेट भर लेना ही जीवन नहीं है। जीवन का उद्देश्य जीवन का मक़सद दूसरों की भलाई करना, देश सेवा करना भी है। देश-वासियों के मेहनत से कमाये हुए टुकड़ों पर मौज उड़ाना साधुता नहीं ढोंग है। ईश्वर-भक्ति को बदनाम करना है।

साधुदल—(सत्यता पूर्वक) सच है! सच है!

प्रकाश—(खुश होकर) मित्रो! केवल सच कहने भर से काम नहीं चलेगा। देखना होगा समय क्या कहता है ? देश क्या चाहता है ?

साधु-दल—(सब एक साथ) क्या चाहता है देश ?

प्रकाश—हाँ! यही जान लेना तुम्हारा कर्तव्य है! आज देश को साधुओं की नहीं, सैनिकों की जरूरत है! उपदेश-दाताओं की ज़रूरत नहीं, उपदेश मानने वालों की आवश्यकता है। जो देश में फैली हुई अत्याचारों की आग को पानी बनकर बुझा सकें। जो बे क़ुसूरों की गर्दनों पर लटकने वाली तलवारों के लिये ढाल बन सकें। अपने धर्म, अपने देश, और अपनी माँ-बहिनों की सतीत्व रक्षा के लिए अपनी क़ीमती कुर्बानी दे सकें।

कबीर—(सुधा के गले में हाथ डालकर) चलो मेरी रानी !...
(गान—करते हुए)

पिलादो एक प्याली और जिससे रंग जम जाये !
छलक पर सुरूर स्वर्ग का घड़ी भर को उतर आये ॥

सुधा—(हाथ में हाथ डालकर) चलो !

[पट परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान तपोवन, झोंपड़ी है जिसके दरवाज़े पर बोर्ड लगा है—'साधु आश्रम' सामने उसके साधु संन्यासी बैठे भक्ति के साथ प्रभु-भजन कर रहे हैं ।]

— गाना —

बन्दे वीर-नाम गुण गाले । बन्दे
यह दुनिया पानी की रेखा ।
क्या सुख तूने इसमें देखा ?
भूल रहा क्यों तू अपनापन-
अपनों को अपनाले । बन्दे
दीपक बुझता सूरज छिपता ।
अन्धकार सभी को ढकता ।
जिसका 'भगवन्' तुझे भरोसा-
सोई ज्योति जगाले । बन्दे०

(गान की ध्वनि चलती रहती है)

प्रभाकर—(प्रवेशकर, गंभीर-स्वर में) बन्द करो गाना !

साधु-दल (उठकर, एक साथ) जो आज्ञा महाराज !

ही कल्याण नहीं चाहती, ससार के असंख्य दुष्टों, नराधमों, पापियों को वन्दना करने योग्य भी बना देती है !

साधु-दल—सत्य है, आपका कहना सत्य है !

प्रकाश—भूलते हो, यह मेरा कहना नहीं, मेरी आवाज नहीं, देश की आवाज है ! देश चाहता है कि ऐसे सङ्कट के समय मे साधु-मण्डली उसके काम आए। यह 'साधु-आश्रम'—(बोर्ड को ओर संकेत करते हुए) 'सैनिक-आश्रम' बनकर उसकी इमदाद करने के लिये क़दम बढाये !

कर दो कुर्बानी तरक्क़ी का इसी में राज़ है !
यह तक़ाज़ा वक्त का है देश की आवाज़ है !!

साधु-दल—तैयार हैं !—

तैयार हैं हम देश-हित का काम करने के लिए !
तैयार हैं हम मौत मे भी जूझ-मरने के लिए !!

प्रकाश—(प्रसन्न होकर) शाबाश !' 'बस उठो, युगान्तर स्थापित करने का समय आ पहुँचा !

[प्रकाश झोपड़ी के दर्वाजे के बोर्ड को हटाकर दूसरा बोर्ड लगाता है—जिस पर लिखा है—'सैनिक-आश्रम' ! फिर झोंपड़ी में घुस वेश परिवर्तन कर, नेकर खाकी कमीज़ की ड्रेस में बाहर आता है। क्रमश सभी साधू सैनिक बन जाते हैं ! प्रकाश, हाथ में केसरिया रग का झण्डा लेकर बीच में खड़ा होता है, और सब इधर-उधर]

प्रकाश—(ज़ोर से) इन्कलाब !

साधु-दल—(एक साथ) जिन्दाबाद !

जिसने नहीं निज देश को निज-साधना का बल दिया।
व्यर्थ ही उसने धरा का भार मे बोझल किया॥
धर्म पहिचाना नहीं, कर्तव्य को भूला रहा—
मूढ़—पशु की भाँति कायर मृत्यु-पथ पर चल दिया।

साधु-दल—सत्य है, सत्य है!

प्रकारा—आज सब देश में जीवन-मरण को समस्या पनप रही है! एक घातक-भ्रांति गरीबों का रक्त चूसने के लिए आग बढ़ती चली आ रही है! धार्मिक अधिकारों पर वज्रपात होने आ रहा है! तब वैसी दशा में—देश में रहने वाले साधु—भगवान् को रिझाने का ढोंग बनाए रखें यह कितने शर्म की बात है? कौन इसे पसन्द करेगा? गरीब-समाज की छाती पर अपनी रोटी का बोझ डालकर उसे और भी विपत्ति में ढकेलना क्या साधुता का मानी है?

साधु-दल—(ऊंचे स्वर में) कदापि नहीं!

प्रकारा—तो छोड़ दो मित्रो! साधुता के ऐसे अपभ्य ढोंग को! जिसका आज समय निकल चुका है। जो दुनिया के लिये बेकार और साबित हो रही है!—
माना कि जीवन के बाग रस का,
विकासकारी वसन्त नहीं है।
मगर तमन्ना यह कह रहा है,
कि साधुता का समय नहीं है!

जब समय होगा, देश में शान्ति होगी! तब हम साधुता के सच्चे-अर्थ को समझने की कोशिश करेंगे। और दुनिया को बतला सकेंगे कि साधुता कितनी पवित्र और कल्याणकारी-वस्तु है! जो केवल अपना

ये स्वप्न तुम्हें बर्बाद कर डालेंगे! काँटों में उलझा देंगे! ....

वज़ीर—(मुस्कराते हुए) रानी! कितनी भोली हो तुम! नहीं जानती कि काँटों के भय से गुलाब के फूल को कई छोड़ नहीं देता! काँटे जमीन पर रगड़ दिए जाते हैं! और फूल रसिक के हाथों का खिलौना बन जाता है!

सुनीता—(तलक कर) खिलौना? भूलते हो, भूलते हो वज़ीर साहिब! वह खिलौना नहीं, मौत बन जाता है! उसकी बेज़ुबान-ख़ुशबू दिमाग को पागल बना देती है! पागल अपनी ज़िन्दगी के मक़सद को भूल जाता है! नेकी और इन्साफ को भूल जाता है! और मौत से खेलने लगता है!

पापों की स्याह-स्याही का जिसमें खुमार है!
वह ज़िन्दा भी रहता है तो मुर्दा शुमार है॥

वज़ीर—(हँसकर) गलती पर हो सुनीता! मैं समझता हूँ उस ज़िन्दगी से, जिसके भीतर कोई रंगीनी, कोई लुत्फ़, कोई रस नहीं, वह मौत बहतर है, जो दुनियावी-ज़ायक़ों से भरी-पूरी है! जिसका मिठास किसी को लुभा सकता है!

सुनीता—झूँठ! उस ज़हरीले मिठास पर रीझने वाला एक पागल के सिवा और कौन हो सकता है?

वज़ीर—(प्रेम से) पागल? सचमुच! सुनीता, तुम्हारी रूप-मदिरा ने मुझे पागल ही बना दिया है! मैं सारी सल्तनत को तुम्हारे क़दमों में डालने के लिए तैयार हूँ! बोलो—बोलो क्या यह पसन्द के लायक़ बात नहीं! जो एक अनाथ आज गरीबी की बेकार ज़िन्दगी

मकारा—वतन के वफ़ादार सिपाहो ! मुल्क के मैदान के शेरो ! वही—
दिखा दो मुल्क के दीवाने क्या-क्या कर गुज़रते हैं !
कि अपना खूँ बहाकर भी न मुँह से आह भरते हैं !!
वतन वालो सितम ढाओ क़हर की बिजलियाँ ढा दो—
दिखाकर मौत का भी सामना हँस-हँस के करते हैं !!

[पटाक्षेप]

छठवाँ दृश्य

[स्थान—सुनीता का घर ! बशीर रणधीरसिंह मंत्री के रूप में खड़े बातें कर रहे हैं ! सुनीता के मुँह पर रौद्रता तीक्ष्णता और भय तीनों विराज रहे हैं।]

सुनीता—(तेज़ी के साथ) न छुओ ! न छुओ ! आख़िर तुम्हारे हृदय की आग ! बे-कुसूर पिताजी को क़त्ल कर, अब मेरा सर्वनाश करने पर तुले हो ! न सताओ, न सताओ बशीर साहिब रहम करो ! नहीं इस अभाग-अबला के आँसू तुम्हें समुन्दर की तरह डुबो देंगे ! प्रलय के पानी की तरह इस दीन-दुनिया से बहाकर खोवेंगे ! मौत की तरह तुम्हारी आत्मा का पीछा करेंगे !

बशीर—(हँसकर) मगर नहीं समझीं—भोली ! आँसू निकलने के पेश्तर तुम्हें खिलखिलाकर हँसना पड़ेगा। और उस हँसने के भीतर दुनिया की सारी रंगीनी समा जायेगी, बहिश्त के सारे मज़े खेलते-कूदते दिखाई देंगे ! मेरी अँधेरी झोंपड़ी में नूर का चिराग़ रौशन हो उठेगा !

सुनीता—(चीखकर) चुप रहो ! अब ऐसी कोरी कल्पना के स्वप्न !

न जिसकी शान का सानी, निराली-शान रखता है।
जो भी अच्छाइयाँ है, सब, उन्हें भगवान रखता है॥

वज़ीर—(तमक कर) साथ ही इसे भी न भूलो कि मैं भी कुछ शान और ताक़त रखता हूँ ! सुनीता !—

सर रईसों के झुका करते हैं मेरे सामने।
शेर दिल, गीदड़ बना करते हैं मेरे सामने॥
मैं अगर चाहूँ तो दुनिया में प्रलय लाऊँ !
अगर इच्छा करूँ तो रात में सूरज को चमकाऊँ !!

सुनीता—(गम्भीरता से) ओफ़ ! हैवानी ताक़त पर इतना जोम ? प्रभुता के मद पर इतना अहंकार ?...नहीं जानते, नहीं जानते कि भाग्य की एक ठोकर तुम्हारी इस अहंकार की चट्टान को चूर-चूर करने की शक्ति रखती है ! गरीब की एक आह तुम्हारा सर्वनाश करने के लिए काफ़ी हो सकती है।

जब तुम्हारा पाप से पूरा घड़ा भर जायेगा।
तब हक़ीकत का नज़ारा सब नज़र आजायेगा॥
तब तुम्हें दिन में सितारे दीखने लग जायेंगे।
प्राण, प्राणों से निकलने के लिये घबरायेंगे॥

वज़ीर—(जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाते हुए) बस, बहुत सुन चुका सुनीता ! मैं तुम्हारे पास उपदेश सुनने के लिए नहीं, अपनी इच्छा ज़ाहिर करने के लिए आया हूँ। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

सुनीता—(शान्ति से) प्यार ? प्यार का पहिला नमूना है मेरे पिता जी की निर्दयता पूर्वक की गई हत्या ! और अब फिर प्यार ज़ाहिर किया जा रहा है। वज़ीर साहिब, मैं जानता हूँ—यह प्यार उसी तरह का है जिस तरह

भट रही है ! यही कल राजरानी बनकर दुनिया पर हुकूमत चलाए ! इस वज़ीर की जो जल्दी ही सिंहासन पर बैठने वाला है—राजेश्वरी बनने का सौभाग्य प्राप्त करे ! न ठुकराओ, न ठुकराओ मेरी प्रेम-भिक्षा की प्रार्थना को—सुनीता ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ !

[वज़ीर सुनीता के पैरों में गिरता है, सुनीता पैर पटक कर दूर हटती है]

सुनीता—(क्रोध से) दूर हटो ! दूर हटो नराधम ! शर्म नहीं आती एक निरीह अबला को तुम्हारे जाल में फँसा, धर्मभ्रष्ट करने के घृणित तरीके को काम में लाते हुए ! मुझे छोड़ दो। मैं जैसी भी हालत में हूँ—अच्छा हूँ ! मुझे तुम्हारी रंगीन-दुनिया सल्तनत की हुकूमत और अमीरी ठाठ-बाट की ज़रूरत नहीं।……

वज़ीर—(झुँझला कर,—दूर खड़े होकर) यह घमंड !

सुनीता—अपने ईमान पर !

वज़ीर—इतनी मज़बूती !

सुनीता—अपनी आन पर !

वज़ीर—इतना भरोसा !

सुनीता—अपने भगवान् पर !

वज़ीर—(क्रोध से) तो देखूँगा तेरे भगवान् का करिश्मा ! क्या करेगा—वह ! कहाँ है तेरा भगवान ?

सुनीता—(शांति से) भगवान् ! भगवान् को नहीं जानते तभी प्रजा पर जुल्मों-कहर की बिजलियाँ ढा रहे हो ! प्रजा-पुत्रियों की इज़्ज़त लेते हुए नहीं घबराते ! वज़ीर साहिब ! भगवान उसी पाक-रूह का नाम है ! जो दुनियावी-बुराइयों से एक दम जुदा है। जिसकी रुहानी-ताकत दुनिया के ज़र्रे-ज़र्रे में समाई हुई है

गरीबों के सताने में जो ताक़त आजमाता है।
समझ रख मैं वह अपने को बुज़दिल ही बनाता है॥

वज़ीर—(क्रोध में) खामोश ! कहे देता हूँ—सुनीता ! तुम्हें मेरी बन कर ही रहना होगा ! प्रेम और प्रार्थना के बल पर नहीं, तो ताक़त के बल पर ही सही। (नर्मी के साथ) तुम्हारी यह दिल को छीन लेने वाली—कमसिन ख़ूबसूरती मेरे ही लिए है !

सुनीता—(गरज कर) चुप ! इज्जत लूटने वाले शरीफ़-डाकू चुप ! ओह ! जहरीले-शब्दों को उगलने वाली तेरी जीभ, के सो टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? क्यों नहीं यह सुनने के पहिले ही मेरे कान बहर बन जाते ! अह ! न जला, न जला, अत्याचारी ! मुझे अपमान को आग में न जला ! निर्बल के ऊपर अपने बल की परीक्षा न कर ! नहीं, सतीत्व का महत्व जानने वाली भारतीय अबला की आह तुझे भस्म कर देगी !

आह जब मुँह से निकाली जायगी !
तब न वह तुझ से सँभाली जायगी।
मौत के पर्दे में तू छिप जायगा—
मत समझ उसको कि खाली जायगी।

वज़ीर—(डाट कर) ऐ ज़बाँ दराज छोकरी ! बन्द कर अपनी बकवास ! वर्ना अपने किए की सजा पायेगी !

अब तलक था फ़ैसला मन्द-मन्द-सी मुस्कान पर !
अब समझ ले फ़ैसला होता है तेरी जान पर !!

सुनीता—(तेजी के साथ) तैयार हूँ ! तैयार हूँ—ज़ालिम ! अन्याय की वेदी पर अपना ख़ून चढ़ाने के लिए। रंगडाल, अपने इन नापाक हाथों को एक स्त्री का क़त्ल

मारने से पहिले बिल्ली चूहे को प्यार करती है। फाँसी लगाने से पहिले मुलजिम के साथ हमदर्दी का बर्ताव किया जाता है।

मिला कर आग पानी में, मुझे उसमें डुबाना है।
पिलाना तो जहर है और शर्बत का बहाना है॥

कबीर—(दुलार से) नहीं प्यारी! मुझे इतना हृदय हीन न समझो मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि इसमें कोई बाधा नहीं। मैं तुम्हें राज रानी बना कर ही रहूँगा!...

निराले मन के मंदिर की तुम्हें देवी बनाऊँगा।
चढ़ा कर प्रेम-सामिग्री मैं देवी को रिझाऊँगा॥

सुनीता—(क्रोध से) चुप रहो कबीर साहिब! एक अबला की पवित्रता पर कलंक लगा कर उसे न सताइए। मैं किसी जुल्मी देश-द्रोही अन्यायी अहंकारी की दासी नहीं, बनना चाहती हूँ। अपने पिता के हत्यारे की सूरत देखना भी पसन्द नहीं करती! दूर हो जाइये आप मेरे सामने से!

कबीर—(झुंझला कर) समझ कर बोलो सुनीता! तुम मेरा अपमान कर रही हो! मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता! आखिर मुझे भी गुस्सा आता है। मैं भी ताकत रखता हूँ!

सुनीता—(चिढ़ा कर) आप ताकतवर हैं? आपकी ताकत का उदाहरण एक अबला की जिन्दगी को बरबाद बना देना उसे दर दर की भिखारिन बना देना, इतने पर भी शान्ति न हो तब बेकस के एकान्त घर में घुस कर अपनी गुस्सा और ताकत का सब दिखलाना ही हो सकता है।

गरीबों के सताने में जो ताक़त आजमाता है।
समझदारों में वह अपने को बुजदिल ही बनाता है॥

वजीर—(क्रोध से) ख़ामोश! कहे देता हूँ—सुनीता! तुम्हें मेरी बन कर ही रहना होगा! प्रेम और प्रार्थना के बल पर नहीं, तो ताक़त के बल पर ही सही। (नर्मी के साथ) तुम्हारी यह दिल को छीन लेने वाली—कमसिन ख़ूबसूरती मेरे ही लिये है!

सुनीता—(गरज कर) चुप! इज्जत लूटने वाले शरीफ़-डाकू चुप! ओह! जहरीले-शब्दों को उगलने वाली तेरी जीभ, के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? क्यों नहीं यह सुनने के पहिले ही मेरे कान बहरे बन जाते! आह! न जला, न जला, अत्याचारी! मुझे अपमान की आग में न जला! निर्बल के ऊपर अपने बल की परीक्षा न कर! नहीं, सतीत्व का महत्व जानने वाली भारतीय अबला की आह तुझे भस्म कर देगी!

आह जब मुँह से निकाली जायगी!
तब न वह तुझ से सँभाली जायगी।
मौत के पर्दे में तू छिप जायगा—
मत समझ उसको कि खाली जायगी।

वजीर—(डपट कर) ऐ जवाँ दराज छोकरी! बन्द कर अपनी बकवास! वर्ना अपने किए की सजा पायेगी!

अब तलक था फ़ैसला मद-मन्द-सी मुस्कान पर!
अब समझ ले फ़ैसला होता है तेरी जान पर॥

सुनीता—(तेजी के साथ) तैयार हूँ! तैयार हूँ—ज़ालिम! अन्याय की वेदी पर अपना ख़ून चढ़ाने के लिए! रँगडाल, अपने इन नापाक हाथों को एक सती का क़त्ल

कर और भी नापाक बना दे। मगर… मगर मेरी इस्मत पर हमला न कर!

होके बे-धर्म जिऊँ ऐसा न दिखला पाप!
जान जाए तो भली, धर्म न जाने पाए!!

वजीर—([illegible]) देखो सुनीता! एक बार फिर समझाये देता हूँ—समझ लो तुम मेरी होकर ही जिन्दा रह सकती हो! नहीं, इसका नतीजा क्या होगा—जानती हो?—

सुनीता—(कड़े स्वर में) जानती हूँ मौत! लेकिन मैं तुम जैसे खूँखार के गले लगने से मौत के गले लगना पसन्द करती हूँ! वह किसी के धर्म को नहीं लूटती!

वजीर—(क्रोध से) अच्छा, देखूँगा तेरा अहंकार! मेरा अपमान करने वाला दुनिया में बोलता-चालता नहीं रहता!

(तेजी से प्रस्थान)

सुनीता—(स्वगत) गया! गया! अस्मत का लुटेरा! इस्मत का डाकू! मौत का पैगाम! गया! रक्षा कर, रक्षा कर, भगवान! इस अनाथ-बालिका की! अपने सुदृढ़ हाथों से थाम ले डूबती हुई जीवन-पतवार! कौन है तेरे बिना मेरा मददगार!

जहाँ पर आदमी का आदमी प्राणों का ग्राहक है!
किसे समझूँ सगा दुश्मन किसे समझूँ सहायक है!!
तुझी पर है भरोसा आखिरी ताकत तुझी मेरी है—
कि तू दुश्मन के दुश्मन का भी रक्षक और मालिक है!!

— पटाक्षेप —

सातवाँ दृश्य

[स्थान—राज-पथ मछेरा का भेष लिए हुए—सैनिक नृत्य के साथ गाते हुए मछेरा! बीच में मछेरा, इधर-उधर सैनिक]

— गाना —

है जान से बढकर देश हमारा, हों उस पर बलिदान !
कण्टक पथ के निरभय-राही !
हम स्वदेश के अमर-सिपाही !!
जीते-जी तक हम रक्खेंगे, इस झण्डे की शान !!
है जान से बढकर देश हमारा, ...
आजादी के हम दीवाने !
शक्ति संगठन की बतलाने !
मनसे 'भगवत्' नहीं तजेंगे, स्वाभिमान की आन !!
है जान से बढकर देश हमारा, ...

(गाते हुए प्रस्थान)

— पटाक्षेप —

आठवाँ-दृश्य

[स्थान—दर्बार ! महाराज सिंहासन पर विराजे हैं ! वज़ीर जाम भर-भर कर पिला रहा है।]

अजित०—(जाम चढ़ाते हुए)

पिला दो स्वर्ग का शर्बत, बुझे दिल की तपन साक़ी !
न सागर में रहे बाक़ी, न मुझ में होश ही बाक़ी !!

कहो, वज़ीर साहिब ! राज्य की कैसी दशा है ? प्रजा का प्रबन्ध तो ठीक है न ?

वज़ीर—(अदब से झुककर) हाँ, जहाँपनाह ! प्रजा चैन की नींद ले रही है ! आप का राज्य दिनोदिन मजबूती की ओर जा रहा है। किसी में ताब नहीं, कि सिर उठा सके !

उठता है नजर को वह मंजर अपनी का खोता है!
जो सिर उठता है फौरन मौत के दामन में सोता है!!
यह है इकबाल की सूली कि दुरमत की फूलों फुप है—
मुकद्दर कुछ नहीं करता जो मैं करता हूँ होता है!

भजित०—(मोसफ्त के साथ) अच्छा यह बात है तो लाओ एक जाम और! (वज़ीर जाम भर कर देता है। उसी समय सिपाहियाने रूप में जंगली का प्रवेश)

जंगली—(फौजी सलाम के साथ) महाराज! बा-अदबता कुछ लोग आप से मिलना चाहते हैं। हुक्म हो तो पेश किया जाय।

वज़ीर—(घुड़क कर) भाग जाओ। कह दो कि महाराज राज काज में मुब्तला हैं। नहीं मिल सकते!

जंगली—(निराले ढंग के साथ) मगर वह लाग बा-अदबता !

वज़ीर—(बात काट कर) चुप! बाअदब का बच्चा!

महाराज—(नशे के झूड़ में) आने दो! मुझसे मिलना चाहते हैं?—मैं उनसे मिलूँगा! उनसे दुख-दर्द को सुनना भी मेरा राज-काज है!

'मिलगा मैं सदा उनसे जो मुझ से दिल से मिलते हैं!
कमिश दिल की है आज भी राहतों से कमल खिलते हैं!

जंगली—(अदब से मुँह कर) बा अदबता बात है महाराज! (जाता है)

(प्रकाश का अपने सैनिक साथी के साथ प्रवेश)

सैनिक-गण—(एक साथ) महाराज की जय हो!

महाराज—(सजीदगी के साथ) कहो! आने का सबब?

प्रकाश—(गंभीरता के साथ) सबब! आपके कानों तक गरीब प्रजा की करुण-पुकारों का पहुँचाना! देश की

निर्दयता-पूर्वक लूटी जाने वाली शान्ति और उसके भयकर परिणाम से आपको सचेत करना।

गरीबों की गरीबी से बनी ये बादशाहत है।
सितम जितना उधर है, इस तरफ उतनी ही आफत है!
भलाई चाहना मकसद है, दोनों की बराबर ही—
वतन के प्रेम की दिल में लिखी जिसके इबारत है॥

महाराज—(ताज्जुब से) क्या हो रहा है देश में?

प्रकाश—(जोश के साथ) क्या हो रहा है?—आप नहीं जानते?

इधर रँगरेलियाँ है, दबदबा है खुशनसीबों का।
उधर आहों के शोले हैं और रोना है गरीबों का॥
इधर मस्तों के मजमे में शराबे दौर चलता है।
उधर खूँ-जिगर आँखों से गमगीनों का ढलता है॥
इधर ईमानी ताक़त लूटती, इज्जत शरीफों की।
उधर मिट्टी में मिलती जिन्दगी, बेकस-जईफों की॥

वजीर—(स्वगत) यह क्या?—काँटा काँटा?

एक काँटा तोड़ कर फेंका तो दिखलाया नया।
दिल में चुभने के लिये जो रास्ते में आ गया!!
है नहीं वाक़िफ मेरी ताक़त की नूरे शान से!
जूझने को आ गया है, खुद ही अपनी जान से!!

महाराज—(आश्चर्य से वजीर की ओर) सुन रहे हैं वजीर साहिब इस नौजवान बहादुर की बातें?

वजीर—(मजबूत स्वर में) सुन रहा हूँ जिन बातों के सुनने के लिये एक सैकिण्ड भी शाही वक्त बर्बाद नहीं करना चाहिये। जिस जुबान को इस बेवौफी से ——

बोलने का मौका दिया गया है, जिसे खींच लेना चाहिए था—उसी जुबान से निकली हुई बातें सुन रहा हूँ—जहाँपनाह !

ये बातें ही नहीं हैं बल्कि शैतानी शरारत है !
सुन्दर शब्दों में कहना चाहिए जिसको बगावत है !!

प्रकाश—(रोष में भर कर) चुप रहो चाटुकार ! तुम्हारी चालबाज़ियाँ मुझ से छिपी नहीं हैं ! देश का बच्चा-बच्चा तुम्हारे शैतानी हथकण्डों से परिचित हो चुका है !— सोचो ज़रा मनुष्यता का हृदय में रख कर सोचो— जिसे तुम बगावत कह रहे हो, उस बगावत की बुनियाद तुम हो ! देश की बरबादी की जड़, तुम हो ! सल्तनत को खाक में मिला देना तुमने विचारा है !

बगावत जिसको कहते हो वह अपनी ही हिमाकत है !
तुम्हारे जालिमाना-जुल्मों की पूरी शरारत है !!
न भूलो सल्तनत के जोश में इन्सानी—फ़र्ज़ों को—
ये सारी सल्तनत आखिर प्रजा ही की अमानत है !

वज़ीर—(ज़ोर से हँस कर) खूब ! नादान-बच्चे ! राजा का राज्य, अपनी चीज़ होता है ! वह प्रजा की अमानत नहीं राजा की ताकत का फल होता है !

प्रकाश—(गंभीरता से) हरगिज़ नहीं ! प्रजा से राजा बनता है राजा से प्रजा नहीं बनती ।

जो राजा राज्य के मद में प्रजा को त्रास देता है ।
वो अपने हाथ से ही मोक्ष अपना मार देता है !!

वज़ीर—(क्रोध से) चुप ! याद रख इस गुस्ताखी का नतीजा

महाराज—(बात काट कर) जगाने दो, जगाने दो ! वह मुझे जगा रहा है ! मेरी खुली हुई आँखों में रोशनी डाल रहा है ! स्वप्नों को सच्चाई में तब्दील कर रहा है ! (प्रकाश से) कहो, मेरे प्यारे युवक, !—कहो ! मैं सब सुनूँगा !

प्रकाश—(प्रेम पूर्ण स्वर में) देश की दशा पर ध्यान दीजिए—महाराज ! जल, थल, आकाश सभी से त्राहि-त्राहि का निनाद निकल रहा है ! प्रजा के विवश-हृदयों में अत्याचार का मूक-इतिहास आग की लपटों से लिखा जा रहा है ! जो एक दिन आपकी राज्य-सत्ता को होली की तरह भस्म कर देगा। प्रजा को गुलाम नहीं, पुत्र समसमझना राजा का कर्तव्य है। प्रजा की उचित माँग पर अपना बड़े से बड़ा बलिदान चढ़ाकर भी प्रजा की—देश की आवाज का सन्मान करना उसका फर्ज होता है।

वजीर—(जोर से) गलत ! राजा, राजा होता है ! उसका अधिकार उसकी इच्छा पर चलता है, प्रजा के इसारों पर नहीं !

प्रकाश—(गरज कर) चुप रहो ! अपनी ही शेखी में न भूले रहो ! अगर देखना चाहते हो, तो देखो !···राजा का कर्तव्य !

[प्रकाश की उंगली के इसारे पर, पटाखे की आवाज के साथ—आधा पर्दा फटता है। सामने सिंहासन पर मर्यादा पुरुषोत्तम-राम विराजे हैं ! वीर-लक्ष्मण हाथ जोड़े खड़े हैं]

राम०—(गंभीरता के साथ) हठ न करो, लक्ष्मण !—

पुत्र से बढ़ कर प्रजा है, नीति के सम्बन्ध से !
कष्ट जो देता प्रजा को, भ्रष्ट वह कर्तव्य से !!

लक्ष्मण—(सविनय) परन्तु—भैया ! सोचो तो ? क्या प्रकाश मान् सूर्य-किरणों में भी सन्देह होता है ? क्या शरदेन्दु की चमत्कारकारी-चाँदनी में भी कालुष्य का दम्भ पाया जाता है ? क्या खिले हुए कुसुमों की सौन्दर्यता पर भी अविश्वास किया जा सकता है ? क्या पार्वतीय शीतल झरनों की निर्मुक्त संगीत-धारा में भी वासना की श्यामता दृष्टिगत होती है ? नहीं प्रभु ! ऐसा नहीं होता !

राम०—(दृढ़ स्वर में) किन्तु प्रजा ऐसा ही समझती है—लक्ष्मण ! उसे सीता की पवित्रता पर सन्देह है ! वह उसकी निन्दा करती है, अपवाद करती है !

लक्ष्मण—(तेजी के साथ) अपवाद ? अपवाद पर न जाओ भैय्या ! लोग धर्म का भी अपवाद करते हैं, ईश्वर का भी अपवाद करते हैं। परन्तु उन्हें त्यागा तो नहीं जाता ! यह सब मूर्खों की मूर्खता का प्रदर्शन है ! जो माता-सी ममतामयी नवनीत-सी कोमल-हृदय, और धर्म की तरह पवित्र, महासती सीता के लिए दुर्वचन कहते हैं ! वह दुष्ट, नराधम ! (जोर से) नारकी-कीट ! अपने जीवन-कुसुम को पापाग्नि में जला कर भस्म करना चाहते हैं !

राम०—(स्नेह के साथ) शान्ति रखो—लक्ष्मण ! शान्ति रखो !

लक्ष्मण—(क्रोधाकृति के साथ) शान्ति ? कैसी शान्ति ? जिसके भवन से एक महान विभूति सर्वदा के लिए लुप्त हुई जा रही हो, क्या वह शान्ति ले सकता है ? जिसके हृदय की पवित्र कोमलता मिथ्याभिमानियों के कारण

पद-दलित हुई जा रही हो, क्या वह शांति का उपासक ही बना रहेगा ? कदापि नहीं ! माता-सीता पर कलंक लगाने वाली जिह्वाओं का छेदन कर दुष्टों की दुष्टता का अन्त कर दूँगा ! दुराग्रही, मिथ्यावादियों का अस्तित्व संसार से खोकर, पृथ्वी को पवित्र बनाऊँगा !

(धनुष चढ़ाते हुए)—बाणों की-अजय-अग्नि से, सन्देह जला दूँगा
दुष्टों की शक्तियों का मिट्टी में मिला दूँगा !
आकाश को फाड़ूँगा, धरती को हिला दूँगा !!
मिथ्या-कुवादियों का सब तर्क भुला दूँगा !!
वाणी में हलाहल है, मैं उसको निचोडूँगा !
जो भ्रांति उठेगी उसे जीवित नहीं छोड़ूँगा !!

राम०—(गंभीरता से) भूल रहे हो, लक्ष्मण भाई ! सीता के पवित्र दुलार ने तुम्हारी राजनैतिक बुद्धि को ढक दिया है। निरीह प्रजा पर बल-प्रयोग करना, राजा का कर्तव्य नहीं, अन्याय है ! शक्ति के बल पर कभी कोई किसी को नहीं दबा पाया ! शासन की महानता शरीर पर नहीं, हृदय पर राज्य करने में है !

लक्ष्मण—(कातर स्वर में) परन्तु भैय्या ! महासती सीता ... !

राम०—(बात काट कर) हाँ, मैं महासती, प्राणेश्वरी सीता को ठुकरा सकता हूँ !

लक्ष्मण—(उतावली के साथ) और मेरे प्रेम, मेरी प्रार्थना को ?

राम०—(गंभीर स्वर में) उन्हें भी ठुकरा सकता हूँ ! किन्तु अपनी मूक-प्रजा की करुण-पुकार को, देश की आवाज़ को, नहीं ठुकरा सकता—लक्ष्मण ! मैं उसके लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग कर सकता हूँ !

लक्ष्मण—(रोते हुए) क्या कह रहे हो—भैया ! एक बार सोच कर तो बोलो !

राम—(दृढ़ स्वर में) न रोओ लक्ष्मण ! कर्तव्य रोना नहीं, साहस चाहता है ! मैं जो कह रहा हूँ—सोचकर ही कह रहा हूँ। कर्तव्य की कसौटी पर उतरने के लिए—प्राणों से प्यारी सीता को, स्नेह-पूर्ण भाई लक्ष्मण की प्रार्थना को ठुकराना ही पड़ेगा !

हठ आप नाग कर्म से, अमृत उगल सके !
गल आप सूर्य ताप से निशा को निगल सके !!
हठ आप मृत्यु, भाग्य की रेखा बदल सके !
सम्भव नहीं कि राम का मन प्रण से टल सके !!

(कागज देते हुए) यह लो ! सीता-वनवास का आज्ञा-पत्र !

[लक्ष्मण रोते हुए कागज हाथ में लेता है। पर्दा फिर गिर जाता है—पटाखे की आवाज के साथ]

प्रकाश—ऐसा ! ऐसा राम-राज्य का आदर्श !

महाराज—(भोलेपन के साथ) अवश्य ! मेरे प्यारे बच्चे ! तुम मेरी आँखें खोल रहे हो, मुझे बतला रहे हो कि हम जिसकी सन्तान हैं, वह कौन थे ? क्या थे ? क्या राम था—उनका ?

वज़ीर—(क्रोध से) धोखा ! धोखा !! षड्यन्त्र !!! महाराज किधर ध्यान दे रहे हैं ? (जोर से) पकड़ो, पकड़ो ! कैद करो ! कैद करो—विद्रोही को ! कैद ... !

[नेपथ्य में बंगलों का सिपाहियाने भेस में आना, प्रकाश का वीरता के साथ खड्ग लेकर आगे बढ़ना, महाराज चुप बैठे रहते हैं ! वज़ीर उठ खड़ा होता है]

प्रकाश—(जोर से) ख़बरदार ! एक बेक़ुसूर देश-भाई पर ज़ुल्म करने के पहिले, अपने दिल से पूछो, वह क्या कहता है ?

(जंगली रुक कर पीछे हटता है)

वज़ीर—(तमक कर) क़ैद करो ! क़ैद करो ! क्या देखते हो—क़ैद करो !

जंगली—(गम्भीरता से) न होगा, मुझसे न होगा—यह पाप !

धड़कता है दिल, काँपती है ज़ुबाँ ये—
न आँखों में ताक़त, न हाथों में दम है !
है बाक़ायदा जिस्म मारा हो जिन्दा—
मैं बढ़ता हूँ लेकिन न बढ़ता क़दम है !!

वज़ीर—(झुँझलाकर) मर ! मर कम्बख़्त ! (जेबों में हाथ डालते हुए) कहाँ है ? कहाँ गया मेरा पिस्तौल ?

प्रकाश—(दृढ़ स्वर में)

ज्वाला न देखता रहा ख़ूँ-रेज़ी की हिंसा की !
अब देखले ताक़त तू आँखों मे अहिंसा की !!

(प्रकाश उसी तरह झण्डा लिए हुए जत्थे सहित जाता है—गाते हुए—'है जान से बढ़कर देश हमारा')

(सब एकटक खड़े रह जाते हैं)

लक्ष्मण—(रोते हुए) क्या कह रहे हो—भैया ! एक बार सोच कर तो बोलो !

राम—(दृढ़ स्वर में) न रोओ लक्ष्मण ! कर्तव्य रोना नहीं, साहस चाहता है ! मैं जो कह रहा हूँ—सोचकर ही कह रहा हूँ। कर्तव्य की कसौटी पर उतरने के लिये—प्राणों से प्यारी सीता को, स्नेह-पूर्ण भाई लक्ष्मण की प्रार्थना को ठुकराना ही पड़ेगा !

टल जाए नाग फर्ण से, अमृत उगल सके !
टल जाए सूर्य ताप से, हिम को पिघल सके !!
टल जाए मृत्यु, भाग्य की रेखा बदल सके !
सम्भव नहीं कि राम का मन प्रण से टल सके !!

(कागज देते हुए) यह लो ! सीता-वनवास का आज्ञा-पत्र !

[लक्ष्मण रोते हुए कागज हाथ में लेता है। पर्दा फिर गिर जाता है—पटाखे की आवाज के साथ]

प्रकाश—देखा ? देखा राम-राज्य का आदर्श ?

महाराज—(भोलेपन के साथ) अवश्य ! मेरे प्यारे बच्चे ! तुम मेरी आँखें खोल रहे हो, मुझे बतला रहे हो कि हम किनकी सन्तान हैं, वह कौन थे ? क्या थे ? क्या रास्ता था—उनका ?

वजीर—(क्रोध से) धोखा ! धोखा !! इन्कलाब !!! महाराज किधर ध्यान दे रहे हैं ? (जोर से) पकड़ो, पकड़ो ! कैद करो ! कैद करो—विद्रोही को ! कैद—— !

[नेपथ्य से संगीनों का सिपाहियाने ड्रेस में आना, प्रकाश का वीरता के साथ कैमरा लेकर आगे बढ़ना, महाराज चुप बैठे रहते हैं ! वजीर का खड़ा होता है]

प्रकाश—(जोर से) ख़बरदार ! एक बेक़ुसूर देश-भाई पर .ज़ुल्म करने के पहिले, अपने दिल से पूछो, वह क्या कहता है ?

(जंगली रुक कर पीछे हटता है)

वज़ीर—(तमक कर) क़ैद करो ! क़ैद करो ! क्या देखते हो—क़ैद करो !

जंगली—(गम्भीरता से) न होगा, मुझसे न होगा—यह पाप !

धड़कता है दिल, काँपती है .ज़ुबाँ ये—
न आँखों में ताक़त, न हाथों में दम है !
है बाक़ायदा जिस्म मारा हो जिन्दा—
मैं बढ़ता हूँ लेकिन न बढ़ता क़दम है !!

वज़ीर—(झुँझलाकर) मर ! मर कम्बख़्त ! (जेबों में हाथ डालते हुए) कहाँ है ? कहाँ गया मेरा पिस्तौल ?

प्रकाश—(दृढ़ स्वर में)

ज्वाला तू देखता रहा ख़ूँ-रेज़ी की हिंसा की !
अब देखले ताक़त तू आँखों से अहिंसा की !!

(प्रकाश उसी तरह झण्डा लिए हुए जत्थे सहित जाता है—गाते हुए—'है जान से बढ़कर देश हमारा')

(सब एकटक खड़े रह जाते हैं)

<u>दूसरा–अङ्क</u>

पहिला-दृश्य

[स्थान—राजपथ, एक लम्बा सा बोर्ड रक्खा हुआ है। राही आते हैं, पढ़ते हुए चले जाते हैं कुछ खड़े रहते हैं। एक फटी हुई कमीज पहिने जैन्टिलमैन बेकार युवक का प्रवेश]

बेकार-युवक—(खीजकर) खोटी तकदीर! खुदा जाने किस साँचे में ढालकर तुझे बनाया और किस बुरी सायत में—मेरे साथ तेरा गठ-बन्धन हुआ। बाप की कमाई और अपनी तन्दुरुस्ती के बदले में जब बी० ए० की डिगरी लेकर आया तो नौकरियों के अन्धेरे ने आँखों को अन्धा बना दिया! आखिर खुदकुशी पर फैसला ठहरा मगर बदकिस्मती ने मौत को भी सर्विस से कम साबित न होने दिया। जैसे ही लाइन पर लेटा कि ड्राइवर की तेज आँखों ने देख लिया और गाड़ी खड़ी हो गई। मुख्तसर यह कि मजिस्ट्रेट की बेकार-हमदर्दी ने जेल के भीतर जाने का मौका भी हाथ से छीन लिया! और बना दिया गया—इन्सान को एकदम बेकार! आज जहर खरीदने के लिए भी पैसे नहीं हैं! ओफ! मौत भी मोल बिकती है। उसके लिए भी पैसे चाहिए। अब मैं हूँ फाकामस्ती है और है—(फटी कमीज को हाथ से सँभालते हुए) यह हाल!

या मददगार तू अब मौत को आसान बना!
अब तो बेकारों का दुनिया में ठिकाना न कहीं!!

(बोर्ड की ओर देखकर) हँय ! यह बोर्ड कैसा ?—(पढ़ता है) 'शाही-ऐलान—पाँच हजार रुपये उस शख्स को इनाम दिये जायेंगे, जो विद्रोही 'प्रकाश' को जिन्दा या मुर्दा दर्बार में हाजिर करेगा। ब-हुक्म महाराज अजितसिंह के, ''वजीर रणधीरसिंह !'

(साँस लेकर) पाँच हजार ? पाँच हजार रुपया !! काश ! अगर यह पाँच हजार रुपये मुझे मिल सकते !

परेशानी का मजमा ख़ुद ब-ख़ुद बेकार हो जाता !
कि इस दुनिया में जीने का मुझे अधिकार हो जाता !!

(उदास भाव से प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

[स्थान—वजीर का कमरा ! सामने पलंग पड़ा है, एक कुर्सी रखी है ! वजीर बेचैनी के साथ चहल क़दमी कर रहा है]

वजीर—(स्वगत) मुसीबत ! मुसीबत !! चारों ओर मुसीबत !!! कैसा अन्धकार है ? कैसी वेदना है ? कैसा हाहाकार मच रहा है—ओफ़ ! कान के पर्दे फाड़े डालता है ! कौन है ? कौन है ? ······ओह !! कैसा जादू था—कैसी शक्ति थी, कैसा तेज था ? कोई कुछ नहीं कर सका । दर्बार से साफ निकल गया ! पिस्तौल जेब में पड़ा रहा और न मिला ! हाथों में बिजली सी दौड़ गई ! शरीर काँप उठा । और वह बचकर निकल गया ! कहाँ गया ? कहाँ गया ? वह दुष्ट ! पकड़ो-पकड़ो क़ैद करो उसे ।

(जंगली का प्रवेश)

जंगली—(अदब के साथ) बा-क़ायदा ! कौन है ?—कहाँ है ? सरकार !

बशीर—(हँसी के ढंग में) कुछ नहीं, हवा थी—अंगली, निकल गई !

अंगली—(मोलेपन के साथ) हवा से बातचीत कर रहे थे, हवा नहीं बँधेगी—मालिक ! (स्वगत) यह क्यों— हवा से नहीं, गुनाहों से बातें कर रहे थे, अपने पापों से बातें कर रहे थे।

बशीर—(बेचैनी के साथ) अंगली ! अंगली !! क्या सचमुच हो ?

अंगली—(झुककर) बा-अदब......!

बशीर—वह कौन था ? क्या सिफत रखता था ? जिसने मजबूत हाथों को मुर्दा बना दिया, उठे हुए हथियारों को रोक दिया ! और......

अंगली—कौन था ? करामाती आदमी था—हुजूर !—आदमी !

बशीर—(ताज्जुब से) आदमी ? आदमी तो मैं भी हूँ ! लेकिन

अंगली—(गम्भीरता से) फर्क है ! तुम मारते हो वह मरता है ! तुम हैवानी ताकत रखते हो वह इन्सानी ताकत !

बशीर—(आश्चर्य से) यानी......

अंगली—(गम्भीर होकर) सत्य और अहिंसा ! जिस सत्य और अहिंसा को लेकर जैन-सम्प्रदाय को कायर और बुज-दिल कहा जाता था आज उसी सत्य और अहिंसा के कदमों में राष्ट्र का राष्ट्र सिर झुका रहा है ! अपनी कामयाबी के लिए उसी को सफल और कारगर समझ रहा है !

> ये वह ताकत है जो हैवानियत का नाश करती है !
> मुहब्बत में डुबोकर आत्मा को पाक करती है !!
> मिटा देती है दिल से बदगुमानी के असूलों को—

कि जुल्मों की अलामत को जलाकर खाक करती है !!

वजीर—(उपेक्षा से) क्या बक रहे हो ? अहिंसा की ताक़त तलवार के घाट उतार दी जायगी—जंगली ! वह कोई हो, मुझसे नहीं जीत सकता ! (पिस्तौल हाथ में लेकर)

मैं इस ताक़त को रखता हूँ जो परिचय आप देती है।
गरजती है थरपती है, कलेजा चाट लेती है ॥

जंगली—हार जाओगे—सरकार ! बाक़ायदा हार जाओगे ! उसके पास वह ताक़त है, जो तुम्हारी ताक़त से बड़ी है, जबर्दस्त है ! क्या आप नहीं जानते कठोर बांस को काट डालने वाला फर्मा, मुलाइम रुई को नहीं काट सकता। जिसके सबब शेर और बकरी एक घाटी पानी पीते हैं ! जिस अहिंसा भावना के कारण ख़ूँखार जानवरों के बच्चे जीते हैं।

(दूसरी ओर से दो नकाबपोश सुनीता को बेहोशी की हालत में लाकर पलग पर लिटा देते हैं।

वजीर—(खुशी के साथ) आगई ! आगई मेरी कामयाबी ! मेरी खुश क़िस्मती ? मेरी दिली मुराद ! (नकाबपोशों से) मेरे फ़र्माबरदारों ! यह लो (दोनो को नोट देता है) अपनी जाँफिसानी का इनाम ! (जंगली से) जंगली ! पहरे पर होशियार रहो।

जंगली—जो हुक्म ! (स्वगत)

मैं खबरदार रहूँ आप रहें गफ़लत में !
ऐशो इशरत न बदल जाए ए मुसीबत में ॥
बात बाक़ायदा हो उसको मानलो फौरन—
फर्क क्या ? अपनी और दूसरे की इज्जत में !!

([illegible])

ये जा नहीं सकते क़दम काँटों की राह में !
तुम देखा करो ख्वाब, अपने ख्वाब गाह में !!
जो .ज़ुल्म, जो ताक़त को लगाओ, लगा सको—
सब जल के खाक होंगे वे अवला की आह में !!

वज़ीर—(नर्मी से) देखो सुनीता ! मैं अपने तरीक़े पर तुम्हें समझा रहा हूँ ! एक शाने-बुलन्द आफीसर की मर्जी के खिलाफ़ चलना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं हो सकता ! याद रक्खो—मेरी इच्छा का सन्मान करना—अपने को महारानी बनाना एक बात है !

सल्तनत और हुक़ूमत की अमलदारी ये !
बा-अदब होगा खड़ा सामने पुजारी ये !!

सुनीता—(क्रोध से) शर्म ! शर्म करो वज़ीर साहेब ! राजा, प्रजा का पिता होता है। पिता, पुत्री पर कुदृष्टि नहीं करता। लेकिन तुम वही पाप करने के लिये तैयार हो रहे हो ! उसी आग में जल मरना चाहते हो, जो नाम तक शेष नहीं छोड़ती ! डरो, डरो ! गुनाहों से डरो, परमात्मा से डरो !

वज़ीर—(ज़ोर से हँसकर) डरूँ ? किससे डरूँ ? परमात्मा से ? कहाँ हैं, परमात्मा पाखण्डियों का मायाजाल ?

सुनीता—(स-क्रोध) सँभल, सँभल ! ओ, अहङ्कारी-नास्तिक ! सँभल, परमात्मा-सी पवित्र-सत्ता के लिये ज़हर न उगल ! परमात्मा की शक्ति, परमात्मा की ज्ञान-दृष्टि संसार के कोने-कोने में फैल रही है ! पृथ्वी, जल, वायु और आकाश सभी उसकी महानता का मनोहर-संगीत गा रहे हैं ! प्राणों की पवित्र झनकार परमात्मा के गुणानुवाद में लीन हो रही है।

कबीर—(उपेक्षा से) वाहियात! यह झूठी और मीठी बातें मेरे दिल को नहीं हिला सकतीं! अगर परमात्मा है, तो मुझे बताओ कहाँ है?

सुनीता—(कठोर स्वर में) कहाँ है?... जहाँ एक दूसरे की जान का कोई ग्राहक नहीं! जहाँ मौत और पैदायश का सवाल नहीं! जहाँ जुल्मो सितम की पुकार नहीं! आज अगर तू अपने हृदय की आवाज पर ध्यान दे—भलाई और नेकी की राह पर कदम बढ़ाये—तो तू भी परमात्मा हो सकता है!

कबीर—(अट्टहास के साथ) मैं परमात्मा? मैं परमात्मा? हा! हा!! हा!!!

सुनीता—(गंभीर स्वर में) न भूल! न भूल! अत्याचारी! तुझ से भी अधिक पापी दुराचारी लुटेरे परमात्मा की कृपा से परमात्मा बन गए—दुनिया के तूफानी समुन्दर से पार चले गए!—

जब तेरी बदकारियों का खात्मा हो जायेगा!
तब तेरा ही 'आत्मा' परमात्मा हो जायेगा!!

कबीर—(इत्मीनान के साथ)—बस करो सुनीता अपनी बकवास! जिस तरह शेर के पंजों में ताकत होती है, भेड़े के माथे में ताकत होती है, और घोड़े के पिछले पैरों में ताकत होती है, उसी तरह औरतों की जुबान में ताकत होती है! मैं तुम्हारी जुबान की ताकत देखने के लिए नहीं, अपनी ताकत से तुम्हारी दिल की चाहों को चूर-चूर करने के लिए बैठा हूँ! बोलो...? क्या मेरे प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार करती हो?

सुनीता—(दृढ़ता के साथ) एक वार नहीं, हजार वार अस्वीकार!

वहरी हूँ, बातें पाप की हरगिज न सुनूँगी!
सच्चाई और धर्म के रास्ते पै रहूँगी!!
हूँ भारतीय-बालिका, ये धर्म है मेरा—
देदूँगी जान अपनी पर ईमान न दूँगी!!

वजीर—(प्यार से) मेरे प्यार की ओर देख!

सुनीता—(तमक कर) मेरी फटकार की ओर देख!!

वजीर—(नर्मी से) मेरी तबियत की ओर देख!

सुनीता—(तेजी से) मेरी मुसीबत की ओर देख!!

वजीर—(झुँझलाकर) मेरी शान की ओर देख!

सुनीता—(तमक कर) मेरे ईमान की ओर देख!!

वजीर—(क्रोध से) मेरी ताकत की ओर देख!

सुनीता—(दृढ़ता से) मेरी हिफ़ाजत की ओर देख!

वजीर—(क्रोध से) देखूँगा; मेरी ताकत के आगे कौन तेरी हिफ़ाजत करने की गुस्ताखी अदा करता है!

सुनीता—भूलता है—भूलता है घमंडी! मारने वाले से बचाने वाले की ताकत कहीं ज्यादह होती है। तू अपने दो हाथों से मुझे मारेगा, और मेरा बचाने वाला मुझे हजार हाथों से बचायेगा!—

बचायेगा वही जिसने करिस्मा कर दिखाया था!
नराधम कौरवों से द्रौपदी-माँ को बचाया था!!

याद कर! विवेक से काम ले—

क्या नहीं तूने सुनी, सीता कहानी बन गई?
शील की ताकत के आगे आग पानी बन गई!!

वजीर—(जोर से) गलत! याद रख, सुनीता! मैं तेरी इन मीठी २ बातों से नहीं टल सकता! अब सम्भल ले—एक

वजीर—(उपेक्षा से) आवारा! यह झूठी और मीठी बातें मेरे दिल को नहीं हिला सकतीं! अगर परमात्मा है तो मुझे बताओ कहाँ है?

सुनीता—(कठोर स्वर में) कहाँ है?...जहाँ एक दूसरे की जान का कोई ग्राहक नहीं! जहाँ मौत और पैदायश का सवाल नहीं! जहाँ जुल्मो सितम की पुकार नहीं! आज अगर तू अपने हृदय की आवाज पर ध्यान दे—सच्चाई और नेकी की राह पर कदम बढ़ाये—तो तू भी परमात्मा हो सकता है!

वजीर—(अट्टहास के साथ) मैं परमात्मा?... मैं परमात्मा? हा! हा!! हा!!!

सुनीता—(गंभीर स्वर में) न भूल! न भूल! अत्याचारी! तुझ से भी अधिक पापी, दुराचारी, खूनी, लुटेरे परमात्मा की कृपा से परमात्मा बन गए—दुनिया के तूफानी समुन्दर से पार चले गए!—

जब तेरी बदकारियों का खात्मा हो जायेगा!
तब तेरा ही 'आत्मा' परमात्मा हो जायेगा!!

वजीर—(दबाव के साथ)—बन्द करो सुनीता अपनी बकवास! जिस तरह शेर के पन्जों में ताकत होती है, मेंढे के माथे में ताकत होती है, और घोड़े के पिछले पैरों में ताकत होती है, उसी तरह औरतों की जुबान में ताकत होती है! मैं तुम्हारी जुबान की ताकत देखने के लिए नहीं, अपनी ताकत से तुम्हारी दिल की चट्टानों को चूर-चूर करने के लिए बैठा हूँ। बोलो.....? क्या मेरे प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार करती हो?

सुनीता—(दृढ़ता के साथ) एक वार नहीं, हजार वार अस्वीकार !

बहरी हूँ, वातें पाप की हरगिज न सुनूँगी !
सच्चाई और धर्म के रास्ते पै रहूँगी !!
हूँ भारतीय-बालिका, ये धर्म है मेरा—
देदूँगी जान अपनी पर ईमान न दूँगी !!

वजीर—(प्यार से) मेरे प्यार की ओर देख !
सुनीता—(तमक कर) मेरी फटकार की ओर देख !!
वजीर—(नर्मी से) मेरी तवियत की ओर देख !
सुनीता—(तेजी से) मेरी मुसीवत की ओर देख !!
वजीर—(झुँझलाकर) मेरी शान की ओर देख !
सुनीता—(तमक कर) मेरे ईमान की ओर देख !!
वजीर—(क्रोध से) मेरी ताकत की ओर देख !
सुनीता—(दृढ़ता से) मेरी हिफाजत की ओर देख !
वजीर—(क्रोध से) देखूँगा; मेरी ताकत के आगे कौन तेरी हिफाजत करने की गुस्ताखी अदा करता है !
सुनीता—भूलता है—भूलता है घमंडी ! मारने वाले से बचाने वाले की ताकत कहीं ज्यादह होती है। तू अपने दो हाथों से मुझे मारेगा, और मेरा बचाने वाला मुझे हजार हाथों से बचायेगा !—

बचायेगा वही जिसने करिस्मा कर दिखाया था !
नराधम कौरवों से द्रोपदी-माँ को बचाया था !!

याद कर ! विवेक से काम ले—

क्या नहीं, तूने सुनी, सीता कहानी बन गई ?
शील की ताकत के आगे आग पानी बन गई !!

वजीर—(जोर से) ग़लत ! याद रख, सुनीता ! मैं तेरी इन मीठी २ बातों से नहीं टल सकता ! अब समझले—एक

कबीर—(उपेक्षा से) आमारा! यह झूठी और मीठी बातें मेरे दिल को नहीं हिला सकतीं! अगर परमात्मा है, तो मुझे बताओ कहाँ है?

सुनीता—(कठोर स्वर में) कहाँ है? जहाँ एक दूसरे की जान का कोई ग्राहक नहीं! जहाँ मौत और पैगम्बरी का सवाल नहीं! जहाँ ज़ुल्मो सितम की पुकार नहीं! आ... अगर तू अपने हृदय की आवाज़ पर ध्यान दे—सच्चाई और नेकी की राह पर क़दम बढ़ाये—तो तू भी परमात्मा हो सकता है!

कबीर—(अट्टहास के साथ) मैं परमात्मा?... मैं परमात्मा? हा! हा!! हा!!!

सुनीता—(गंभीर स्वर में) न भूल! न भूल! अत्याचारी! तुम से भी अधिक पापी, दुराचारी, ख़ूनी, लुटेरे परमात्मा की कृपा से परमात्मा बन गए—दुनिया के तूफ़ानी समुन्दर से पार चले गए!—

> जब तेरी बदकारियों का ख़ात्मा हो जायेगा!
> तब तेरा ही 'आत्मा' परमात्मा हो जायेगा!!

कबीर—(दबाव के साथ)—बन्द करो सुनीता अपनी बकवास! जिस तरह शेर के पञ्जों में ताक़त होती है, भैंसे के माथे में ताक़त होती है और घोड़े के पिछले पैरों में ताक़त होती है, उसी तरह औरतों की ज़बान में ताक़त होती है! मैं तुम्हारी ज़ुबान की ताक़त देखने के लिए नहीं, अपनी ताक़त से तुम्हारी जिस्म की चट्टानों को चूर-चूर करने के लिए बैठा हूँ! बोलो...? क्या मेरे प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार करती हो?

सुनीता—(दृढ़ता के साथ) एक बार नहीं, हजार बार अस्वीकार !

वहरी हूँ, वातें पाप की हरगिज न सुनूँगी !
सच्चाई और धर्म के रास्ते पै रहूँगी !!
हूँ भारतीय-बालिका, ये धर्म है मेरा—
देदूँगी जान अपनी पर ईमान न दूँगी !!

वजीर—(प्यार से) मेरे प्यार की ओर देख !

सुनीता—(तमक कर) मेरी फटकार की ओर देख !!

वजीर—(नर्मी से) मेरी तबियत की ओर देख !

सुनीता—(तेजी से) मेरी मुसीबत की ओर देख !!

वजीर—(झुँझलाकर) मेरी शान की ओर देख !

सुनीता—(तमक कर) मेरे ईमान की ओर देख !!

वजीर—(क्रोध से) मेरी ताकृत की ओर देख !

सुनीता—(दृढ़ता से) मेरी हिफाजत की ओर देख !

वजीर—(क्रोध से) देखूँगा, मेरी ताकत के आगे कौन तेरी हिफाजत करने की गुस्ताखी अदा करता है !

सुनीता—भूलता है—भूलता है घमंडी ! मारने वाले से बचाने वाले की ताकत कहीं ज्यादह होती है। तू अपने दो हाथों से मुझे मारेगा, और मेरा बचाने वाला मुझे हजार हाथों से बचायेगा !—

बचायेगा वही जिसने करिस्मा कर दिखाया था !
नराधम कौरवों से द्रोपदी-माँ को बचाया था !!

याद कर ! विवेक से काम ले—

क्या नहीं तूने सुनी, सीता कहानी वन गई ?
शील की ताकृत के आगे आग पानी वन गई !!

वजीर—(जोर से) गलत ! याद रख, सुनीता ! मैं तेरी इन मीठी २ बातों से नहीं टल सकता ! अब समझले—एक

बशीर—(कपना से) बाबाश ! यह झूठी और मानी बातें मेरे दिल को नहीं हिला सकतीं ! अगर परमात्मा है तो मुझे बताओ कहाँ है ?

सुनीता—(कठोर स्वर में) कहाँ है ?… जहाँ एक दूसरे की जान का कोई ग्राहक नहीं ! जहाँ मौत और पैदाइश का सवाल नहीं ! जहाँ जुल्मो सितम की पुकार नहीं ! अगर तू अपने हृदय की आवाज़ पर ध्यान दे—सच्चाई और नेकी की राह पर क़दम बढ़ाये—तो तू भी परमात्मा हो सकता है !

बशीर—(अट्टहास के साथ) मैं परमात्मा ! मैं परमात्मा ! हा हा !! हा !!!

सुनीता—(गंभीर स्वर में) न भूल ! न भूल ! अत्याचारी ! तुझ से भी अधिक पापी, दुराचारी खूनी, लुटेरे परमात्मा की कृपा से परमात्मा बन गए—दुनिया के तूफ़ानी समुन्दर से पार चले गए !—

> जब तेरी बदकारियों का खात्मा हो जायेगा !
> तब तेरा ही 'आत्मा' परमात्मा हो जायेगा !!

बशीर—(दबाव के साथ)—बन्द करो सुनीता अपनी बकवास ! जिस तरह शेर के पन्जों में ताक़त होती है, मेंढे के माथे में ताक़त होती है, और घोड़े के पिछले पैरों में ताक़त होती है, उसी तरह औरतों की जुबान में ताक़त होती है ! मैं तुम्हारी जुबान की ताक़त देखने के लिए नहीं, अपनी ताक़त से तुम्हारी दिल की चट्टानों को चूर-चूर करने के लिए बैठा हूँ ! बोलो… ? क्या मेरे प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार करती हो ?

(इसी समय ऊपर से प्रकाश कूद पड़ता है, दूसरे ही झटके में वजीर का पिस्तौल हाथ से दूर जा गिरता है)

ाश—(तेजी से)—सावधान !

जब मारने वाला पशुता को खुश हो हो कर अपनाता है !
तब विवश बचाने वाला भी इस तरह बचाने आता है !!

ीर—(काँप कर) कौन ?—प्रकाश !

ाश—(दृढ स्वर में) हाँ ! अगर तुम अन्धकार हो, तो मैं प्रकाश हूँ।

ीर—तुम कोई हो, लेकिन अब जिन्दा नहीं लौट सकते !

ाश—परवाह नहीं !—

यह जान रहे न रहे लेकिन, मेरे गौरव की शान रहे !
दुनियाँ का मैं उपकार करूँ, जीते जी तक यह ध्यान रहे !!

पिस्तौल उठाने के लिए वजीर बढता है, प्रकाश रोकता है। देर तक छीना झपटी होती रहती है। प्रकाश को चोट लगती है। वजीर को धक्का लगता है—जोर से गिरता है।
सिर से खून निकलता है—वेहोश हो जाता है !
प्रकाश सुनीता को लेकर भाग जाता है !
नैपथ्य में वाद्य बजता रहता है]

—पटाक्षेप—

तीसरा-दृश्य

[स्थान—रमणीक-जंगल ! रिमझिम-रिमझिम मेंह पड़ रहा है। सुनीता और प्रकाश का गाते हुए प्रवेश]

(सम्मिलित गायन)

ोनों—हम हिल-मि[illegible] चाएँ !

(इसी समय ऊपर से प्रकाश कूद पड़ता है, दूसरे ही झटके में वज़ीर का पिस्तौल हाथ से दूर जा गिरता है)

प्रकाश—(तेज़ी से)—सावधान !

जब मारने वाला पशुता को खुश हो हो कर अपनाता है !
तब विवश बचाने वाला भी इस तरह बचाने आता है !!

वज़ीर—(काँप कर) कौन ?—प्रकाश !

प्रकाश—(दृढ स्वर मे) हाँ ! अगर तुम अन्धकार हो, तो मैं प्रकाश हूँ।

वज़ीर—तुम कोई हो, लेकिन अब जिन्दा नहीं लौट सकते !

प्रकाश—परवाह नहीं !—

यह जान रहे न रहे लेकिन, मेरे गौरव की शान रहे !
दुनियाँ का मैं उपकार करूँ, जीते जी तक यह ध्यान रहे !!

[पिस्तौल उठाने के लिए वज़ीर बढता है, प्रकाश रोकता है। देर तक छीना झपटी होती रहती है। प्रकाश को चोट लगती है। वज़ीर को धक्का लगता है—ज़ोर से गिरता है। सिर से ख़ून निकलता है—बेहोश हो जाता है ! प्रकाश सुनीता को लेकर भाग जाता है ! नैपथ्य में वाद्य बजता रहता है]

—पटाक्षेप—

तीसरा-दृश्य

[स्थान—रमणीक-जंगल ! रिमझिम-रिमझिम मेंह पड़ रहा है ! सुनीता और प्रकाश का गाते हुए प्रवेश]

(सम्मिलित गायन)

दोनों—हम हिल-मिल खेल रचाएँ !

सुनीता—तुम बन जाओ जगमग सागर,
मैं बन जाऊँ नैय्या!
प्रकाश—लेकर दृढ़ पतवार प्रेम की,
जीवन पार लगायें!!
दोनों—हम हिल-मिल खेल रचायें!
प्रकाश—फूल बनो तुम कोमल सुन्दर,
मैं पराग बन जाऊँ!!
दोनों—अपनी पराग सुन्दरता से—
दुनियाँ को महकायें!
हम हिल-मिल खेल रचायें!
सुनीता—देव बनो तुम मन-मंदिर के,
दासी मैं बन जाऊँ!
प्रेम प्रसाद चढ़ाऊँ दिन दिन—
दोनों—जीवन सरस बनायें!

हम हिल मिल खेल रचायें! *

सुनीता—(आनंदित होकर) कैसा धन्य दिवस है! आकाश प काले-काले बादल चक्कर काट रहे हैं जैसे किसी क ढूंढ रहे हैं।

प्रकाश—तुमने ठीक ही कहा—सुनीता! 'किसी को' ढूंढ रहे हैं— इसी लिए ढूंढ रहे हैं कि अपना पर जीवन एक बोम होता है! (बिजली चमकती है) वह देखा! काले काले बादलों ने आखिर अपना साथी आज ही मिला (आकाश की ओर) बरसो! गरजो! गरजो! सूर्य से मत डरो! तुम जीवन प्याली में अमृत घोल द दो! आज सौदामिनी तुम्हारे दामन में मुँह छिपाक मुस्करा रही है! (सुनीता से) देखती हो सुनीता

बिजली और बादल के प्रेम-सम्मिलन पर आकाश जल वृष्टि कर रहा है ! समीर के ठण्डे-ठण्डे झोंके तालियाँ बजा रहे हैं। ··(प्रकाश चुप रह कर कुछ सोचने लगता है)

सुनीता—(प्रेम-पूर्ण स्वर में) क्या सोचने लगे—प्रकाश ?

प्रकाश—(गंभीरता से) कुछ नहीं। कल्पना की दृष्टि एक स्वप्न देख रही है।

सुनीता—क्या स्वप्न देख रही है ?

प्रकाश—(मुस्कराकर) न पूछो सुनीता। जो देख रही है वह वर्तमान से दूर है। मौजूदा वक्त से अलग की बात है।

सुनीता—(साग्रह) फिर भी—

प्रकाश—(प्रेम-पूर्ण स्वर में) देख रही है—कि मेरे सिर पर राज-मुकुट रखा गया है। सारा साम्राज्य मेरे चरणों में झुक रहा है।

सुनीता—(उत्सुकता से) और · ·· ?

प्रकाश—(गभीर स्वर में) और ? और मैं तब जीवन को मधुर बनाने के लिए एक साथी की खोज में लीन होने जा रहा हूँ। लेकिन मूर्ख बादलों की तरह मुझे चक्कर नहीं काटने पड़ते। इधर-उधर घूमने की तक़लीफ नहीं उठानी पड़ती।

सुनीता—(भोलेपन के साथ) तो · ?—

प्रकाश—(उल्लास भरे स्वर में) सौदामिनी से भी अधिक चंचल, बिजली से भी ज्यादह चमकदार और लजीली मुझे अनायास मिल जाती है। मैं उसे हृदय के सिंहासन पर बैठा कर अपने को सुखी मानने लगता हूँ !

सुनीता—(जिज्ञासा से) फिर···?

प्रकाश—(सप्रेम) फिर ? स्वप्न भंग हो जाता है ! लेकिन मेरी हृदयेश्वरी—मेरे कल्पना-लोक की रानी—फिर भी मैं देखता हूँ, कि मेरे पास है !

दूर कोई भी नहीं है प्रेम के इतिहास में !
चन्द्रमा के साथ ही है चाँदनी आकाश में !!

सुनीता—(मुदित होते हुए) क्या कह रहे हो, प्रकाश !—कहाँ है—तुम्हारी प्राणेश्वरी ?

प्रकाश—(मुस्कराकर) बहुत पास !

सुनीता—(साग्रह) फिर भी—

प्रकाश—(सुनीता की ठोड़ी छूते हुए) यह !!!

यही है दामिनी जो बादलों का मान रखती है !
यही है चाँदनी जो चन्द्रमा की शान रखती है !!

(दोनों हँसते हैं ! इसी समय बेकार-युवक का प्रवेश)

बेकार-यु०—(स्वगत) यही है ! यही है ! मेरी बेकारी का अन्त ! पाँच हजार रुपए का प्रोमसरी नोट ! और मेरी कारगुजारी का कामयाब नतीजा ! जिसके लिए बंगाल का लाट हैरान—यह विद्रोही प्रकाश यही है !—यही है !!

(प्रकाश चौंक कर देखता है)

प्रकाश—(दृढ़ स्वर में) हाँ ! तुमने ठीक ही पहिचाना, मैं ही प्रकाश हूँ—मेरा ही नाम प्रकाश है ! कहो भाई ! क्या चाहते हो ?

(प्रकाश आगे बढ़ता है, युवक पीछे हटता है)

डरो मत, इधर आओ ! बोलो, तुम क्या चाहते हो ?

(युवक अपने फटे कपड़ों की ओर देखता है)

प्रकाश—(नर्मी से) रुपये चाहते हो, पाँच-हजार रुपये ? (कातर-स्वर में) ओफ़, बेकारी ! तूने आज मनुष्य की मनुष्यता छीन ली है ! उसकी बुद्धि पर मुसीबतों के पर्दे डाल रखे हैं ! वह नहीं सोच सकता कि उसे क्या करना चाहिए—क्या नहीं ? आज प्राण घातक बेकारी देश को रसातल पहुँचाने में भागीदार बन रही है। (युवक से) चलो भाई ! मैं तुम्हे पाँच हजार रुपए दिलवाऊँ ।

सुनीता—(विह्वल कण्ठ से) कहाँ चले ?

प्रकाश—(गम्भीर स्वर में) एक देश-भाई का भला करने !

सुनीता—(आँसू पोंछते हुए) और मेरा प्रेम ?

प्रकाश—(गम्भीर स्वर में) तुम्हारा प्रेम, मेरे देश-प्रेम को नहीं जीत सकता ! दुखित न हो ओ सुनीता ! मेरे हृदय में देश-प्रेम के लिए पहिला स्थान है ! जो एक सच्चे देश-वासी का कर्तव्य होता है !

देश भाई की मुसीबत पर न जिसका ध्यान है !
सिर्फ कहने के लिए इन्सान वह इन्सान है !!

(सुनीता रोती हुई पीछे भागती है)

— पटाक्षेप —

——卐——

चौथा-दृश्य

[स्थान—सुधा-वेश्या का घर ! पलंग पर वजीर रणधीरसिंह लेटे हैं ! सिर में पट्टी बँधी है। आप ही आप कराहते हैं, बड़बड़ाते हैं ! बेहोशी-सी छा रही है ! सुधा दूर खड़ी सुन रही है, उसके चहरे पर परिवर्तन होता रहता है ।]

वज़ीर—(स्वगत) निकल गई, निकल गई ! एकाएक मेरे हाथ से निकल गई ! आह ! आह !! वह कैसी सुन्दर थी, कैसी खूबसूरत थी—गोया बहिश्त की परी थी ! मेरे दिल की बेगम थी, मेरे अरमानों की दुनिया थी ! निकल गई ! निकल गई, एक दम निकल गई !… ओ…ओफ़ ! बड़ी तकलीफ़ है, बड़ा दर्द है ! सिर में आग जल रही है ! शरीर में आग जल रही है, चारों ओर आग—आग—आग धधक रही है !…(क्षण भर चुप रहकर) सुनीता ! सुनीता !! तुम कहीं भी जाओ, लेकिन मेरे हाथ से नहीं बच सकती ! मैंने तुम्हें वचन दिया है, शपथ लिया है कि तुम्हें अपनी महारानी बनाकर ही छोड़ूँगा ! यह मिट नहीं सकता ! मैं राजा बनूँगा, जरूर राजा बनूँगा ! तुम मेरी ताक़त नहीं जानती ! (ज़ोर से) तुम मेरी ताक़त नहीं जानती !!

सुधा—(पास आकर) चिल्लाइए नहीं ! आराम से लेटे रहिए— मैं आपकी ताक़त जानती हूँ ! आपकी कोई ताक़त मुझसे छिपी नहीं है !

वज़ीर—(घबराकर आँखें खोलकर) कौन ? कौन ? सुधा !… कहो कहो तुमने क्या सुना ? क्या सुना ? भूल जाओ, भूल जाओ ! मैंने जो कुछ कहा सब पागलपन था— बदहवासी की भूँठ था ! सब ग़लत था !! ओफ़ ! आफ़ तकलीफ़ ने मुझे पागल बना दिया है—सुधा ! मैं पागल हूँ—पागल !

सुधा—(शान्ति से) वज़ीर साहिब ! आप कैसे हैं, पड़े रहिए ! लेकिन ख़ामोश ! अभी आपको आराम की ज़रूरत है !

(वज़ीर आँखें मींचकर लेट रहता है)

सुधा—(अलग हटकर—स्वगत) धोखा ! धोखा !! चालबाजी, मेरे साथ भी चालबाजी ? हैरत ! हैरत !! मैं नहीं समझी थी—तू इतना बे-वफ़ा है, इतना कमीना है, इतना दगाबाज है ! मगर समझले—तू कितना ही चालाक क्यों न हो, कितना ही होशियार फरेबी क्यों न हो, एक वेश्या से नहीं जीत सकता।

रईसों को दिलेरों को जो उँगली पर नचाती हैं !
जो आँखों वालों को बेहोश कर अन्धा बनाती है !!
उसी से चाल चलकर आग से तू खेल खेला है—
समझ रख आग में पडता है, वह उसको जलाती है !

तू दुनिया की आँखों में धूल झोंक सकता है, लेकिन एक वेश्या की आँखों को बन्द नहीं कर सकता ! याद रख, याद रख कमीने कुत्ते ! मेरे साथ चाल खेलकर तू भी सल्तनत नहीं पा सकेगा ! सल्तनत के बदले तुझे फाँसी मिलेगी—मौत की सजा मिलेगी ! भूल जा, भूल जा ! अपनी घमण्डी और शरारत भरी चालाकियों को भूल जा ! (गम्भीर स्वर मे) तू नहीं जानता कि तेरी जिंदगी मेरी मुट्ठी में बन्द है !-मुट्ठी खोलते ही तेरी जिंदगी कपूर की तरह उड़ जायगी। मौत की गोद में जा लेटेगी !

तेरी चालाकियों को एक पल में काट दूँगी मैं !
जो खोदी कब्र है तूने उसी में पाट दूँगी मैं !!
तेरी तक़दीर से बदफेल तेरे ही लडा दूँगी !
न भूलेगा तू मरने तक सबक़ ऐसा सिखा दूँगी !!

(जाती है)

वजीर—(करवट लेकर स्वगत) बचाओ ! बचाओ ! मुझे बचाओ ! सुधा ...! सुधा ! मुझे बचाओ ! बे-कुसूर जागीर-

दार की आत्मा मुझे त्रास आ रही है। मैं हाथ जोड़ता हूँ! मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो! अब नहीं किसी को मारूँगा, मैं खुद मर रहा हूँ! ज़िन्दगी ख़त्म हो रही है! मुझे छोड़ दो! (उठता है, आँखें फाड़कर चारों ओर देखता है) हैं! यहाँ कोई नहीं है? ख्वाब देखा था—स्वप्न देखा था—वाह—वाह! (हँसता है)

— पटाक्षेप —

पाँचवाँ–दृश्य

[स्थान—दरबार। महाराज अजितसिंह सिंहासन पर बैठे हैं। वज़ीर रणधीरसिंह शराब की बोतल प्याला में उँडेल रहा है।]

महाराज—(मुँह मोड़कर) एक बार, दो-बार, हज़ार बार कह चुका कि अब मैं नहीं पीना चाहता! तुम फिर क्यों कहते हो? मुझे अब अपना दिमाग़ सही कर लेने दो देश की खबर लेने दो। मुझे जान लेने दो कि मैं राजा हूँ।

वज़ीर—(हँसकर) कैसी बातें कर रहे हो—महाराज? दुनिया कह रही है कि आप राजा हैं। आप स्वयं भी जानते हैं कि आप राजा हैं। इन झमेलों में न पड़िये, छोड़ दीजिए इन झंझटों को। लीजिए—(जाम देता है)

पीजिए ये जाम-शर्बत हुस्न का पैग़ाम है!
दूर करना झगड़ों से इसका पहिला काम है!!

महाराज—(हाथ में जाम लेकर) नहीं सुनते? मैं कह रहा हूँ इसे नहीं सुनता वज़ीर साहब! मुझे अब ये बातें बुरी लगना महसूस होने लगी हैं! मुझे अब तुम्हारा ये रवैया पसन्द नहीं। अलग जाओ—अलग जाओ। अगर

मैं राजा—हूँ तो तुम्हें हुक्म देता हूँ—कि इस रवैये को बदल डालो !

वज़ीर—(स्वगत) यह क्या ?

जिसे मैं ख़ाक़ समझे था वह निकला आग का शोला !
कि मुर्दा जिसको जाना था वह जिन्दों की तरह बोला !!
ये गलती थी कि मैंने ख़ात्मा तेरा नहीं सोचा—
यही सोचा, यही सोचा कि भोला है निरा भोला !!

मगर अब मालूम हुआ कि तुझे भी जिन्दगी से हाथ धोने का शौक पैदा हुआ है। तेरी मौत भी मेरे ही हाथों तुझे अपनाना चाहती है।

शमा जलता है अपनी रोशनी से जगमगाता है !
जब मरना चाहता है .ख़ुद-ब-.ख़ुद परवाना आता है !!

(महाराज से) जो हुक्म, जहाँपनाह ! जो आप को बुरा लगे वह मुझे अच्छा नहीं लग सकता। एक वफादार दोस्त, दोस्त की .ख़ुशी में ही अपनी .ख़ुशी मानता है !

तुम्हारी शान के दामन में रहती जिन्दगी मेरी !
तुम्हारी है .ख़ुशी जिसमें उसी में है .ख़ुशी मेरी !!

महाराज—(.ख़ुश होकर) अच्छा, तो लाओ एक जाम और !

(वज़ीर जाम देता है, महाराज पीते हैं, इसी वक्त प्रकाश का बेकार-युवक के साथ प्रवेश)

प्रकाश—(गरजते हुए)

लो, मुझे चढाओ फाँसी पर, या सितम नया ईजाद करो !
जिस तरह मुनासिब समझो तुम, मेरी हस्ती बरबाद करो !!
मैं जान हथेली पर लेकर, लोगों को मर्यक़ सिखाता हूँ !
सन्देश सगठन का देकर, जागृति का बिगुल बजाता हूँ !!

अपराध किया है यह मैंने सोते से देश जगाया है!
जो हक उसका था छिना हुआ, मैंने वह उसे बताया है!!
क्या देखते हो, मुझे गिरफ्तार करो! क़ैद करो!
और अपनी बात के मुताबिक—एलान के मुताबिक—
पाँच हज़ार रुपये इस बहादुर को इनाम दो!
[वज़ीर ५०००) के नोट मेज पर से उठाकर बेकार युवक
को देता है। और साथ ही सिपाहियों को बुला
कर हुक्म देता है। दो सिपाही आते हैं]

वज़ीर—गिरफ्तार करो!

सिपाही—जो हुक्म! (प्रकाश के हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी डाल दी जाती है)

प्रकाश—(बेकार युवक से) जाओ भाई! बच्चों का प्रबन्ध करो, अपनी मौज की दुनिया बसाओ और आनन्द करो। मगर बेकारों और ग़रीबों के साथ हमदर्दी दिखाना न भूल जाना!

है क़ायम जिन उसूलों से, ये इन्सानों की इन्सानी!
उसे मत भूलकर करना कभी मजबूर नादानी!!
दया करना ग़रीबों पर, ये इन्सानी तक़ाज़ा है—
जो इसको टालता है वह उठाता है परेशानी!!

(बेकार-युवक जाता है)

वज़ीर—(व्यंग्य के साथ) जाओ!—
ले जाओ राज-द्रोही को, ज़ंजीरें जकड़ कर!
सब भूल जाय देश-प्रेम, जेल में सड़ कर!!

प्रकाश—(रस्सियाँ झटक कर) चुप रहो चापलूस!—
तुम क्या समझोगे देश-प्रेम की मीठी-मीठी बातों को!
बलि पर आएगी एक लहर पतन कर देगी कामों को!!

यह देश-प्रेम की शोभा है, जो फबती है मरदानों को !
वह कृष्ण-सदन है जेल नहीं, आजादी के दीवानों को !!

[पर्दा फटता है—हिन्दुस्थान का नक्शा दिखाई देता है]

प्रकाश—(जोर से) भारत माता की जय ! जन्मभूमि की जय !!

[सिपाही प्रकाश को ले जाते हैं। भारत माता का नक्शा अदृश्य होता है। वजीर चुप खड़ा रहता है !]

— ड्राप —

<u>तीसरा–अङ्क</u>

पहिला–दृश्य

[स्थान—जेल, फाटक के भीतर प्रकाश जेली-ड्रेस में खड़ा है। इबादत कर रहा है, चेहरे पर गम्भीर भाव हैं। बाहर चार पहरेदार बैठे मौज में संगीत का मजा ले रहे हैं—एकदम मस्त]

—गायन—

तेरे जलवे में मेरी रहे जुस्तजू !
ऐ प्रभु ! ऐ प्रभु !! ऐ प्रभु ! ऐ प्रभु !!
तुझ से बढ़कर न देखा कोई खुशनुमा !
जगमगाता तेरी रोशनी से जहाँ !!
जिस में हम तेरी रौनक को करते बयाँ !
तू मुबर्रा है नक्शों से ऐ पाक-रू ! ऐ प्रभु० ॥१॥

दिल से तेरी इबादत में जो भी लगा !
उसकी बरकतियों का हुआ इन्तहा !!
तेरी लुत्फे-करम से न कोई रिहा !
जर्रे-जर्रे में तेरी समाई है तू ! ऐ प्रभु ॥२॥

माना दुनियावी नज़रों से 'भगवत' जुदा।
फिर भी पाते हैं रहमत मुसीबत जदा !!
हर तरफ से सुनाई य देती सदा !
तुमसे मेरी भी ग़म से भरी आरज़ू !!
ऐ प्रभु ! ऐ प्रभु !! ऐ प्रभु ! ऐ प्रभु !!॥३॥

(सिपाही लोग गाना ख़त्म कर फाटक पर पहरा लगाने लगते हैं ।)

प्रकाश—(स्वगत) समर भूमि से दूर, देश की भलाई से दूर—मैं कहाँ पडा हूँ ? ओ, सीखचों के भीतर आने वाली, आज़ाद-वायु ! मेरा सन्देश पहुँचाओ, देशवासियों से कहो कि वह अपनी क़ुर्बानी की भावना को बढ़ाये रहें, ज़ुल्मों को सहते चले जाएं ! एक दिन होगा जब वह अपनी कामयाबी को सामने देखेंगे ! अपनी मिहनत से भारत की शान को जगमगाते हुए पायेंगे !

ये भारतवर्ष की सन्तानें, गौरव फिर दिखायेंगी !
विरोधी शक्तियाँ स्वयमेव ही, सब हार जायेंगी !!
उधर हैं ज़ुल्म साधन और है तलवार-हिंसा की !
इधर हैं सत्य पर श्रद्धा और ताक़त है अहिंसा की !!
जगो ! जगो !! देशवासियों, जगो ! दिखादो हम

उन्हीं माँ की दुलारी सन्तानें हैं, जिन्होंने अपना जीवन देश के लिए हँसते-हँसते दे डाला ! जिनकी पवित्र कीर्ति से आज संसार का वायुमण्डल भर रहा है। जिनकी छाती चूम चूम कर हम बड़े हुए हैं। जिन्होंने उँगली पकड़कर हमें चलना सिखाया है !

यही है वक्त माँ के दूध को सन्मान देने का !
यही है वक्त अपनी वीरता से नाम लेने का !!

(प्रकाश एक ओर खड़ा चुपचाप, सोचने लगता है। आधा पर्दा फटता है, सामने समरसिंह और सुन्दरी विद्युल्लता खड़ी दिखाई देती है !)

समरसिंह—(प्रेम मे) प्रिये ! प्रिये, विद्युल्लते !

विद्यु०—(क्रोध मे) चुप रहो समरसिंह ! मैं एक विश्वासघाती,

अभी फूल कलंकी नराधम के मुँह से अपने लिए—? नहीं सुन सकती! भूल जाओ—वह स्वप्न, जब हम-तुम दोनों फूल और पराग की तरह खेला करते थे!

समर —(करुण-स्वर में) परन्तु तुमने मुझे वचन दिया था विद्युल्लता! कि मैं तुम्हारी ही जीवन-संगिनी बनूँगी।

विद्यु —दिया था! परन्तु अब वह बीते हुए समय की तरह व्यर्थ है। इसलिए कि तब तुम देश-द्रोही नहीं थे, विश्वासघाती और हृदय-हीन नहीं थे! किन्तु आज तुम्हारा हृदय पाप के सागर में डूबा हुआ है। तुम्हारा दामन दम्भ की स्याही से रँगा हुआ है! और तुम्हारी सूरत मौत से भी भयानक बन रही है। मैं नहीं जानती थी—कि तुम यवन-पक्ष से मिलकर, जन्म-भूमि चित्तौड़ को बर्बाद कर डालोगे? स्वदेश का सर्वनाश करते भी तुम्हारे हाथ न काँपेंगे?

जो सिर पर देश की बरबादियों का पाप लेता है!
उसे संसार का विद्वान-दल धिक्कार देता है!!

समर—(गर्व के साथ) भूल! भूलती हो—विद्युल्लते! मेरा प्रेम दम्भ नहीं, धोखा नहीं, अटूट प्रेम है! मैं प्रेमी हूँ! तुम्हारे प्रेम के लिए मुझे जन्म-भूमि तो क्या सारा संसार बर्बाद करना पड़े तो मैं उसके लिए तैयार हूँ!

आँखों में तुम्हीं दिल में तुम्हीं, प्यार में तुम हो!
प्राणों में तुम्हीं, साँसों के हर तार में तुम हो!!
तुम किसमें नहीं, मौत की तलवार में तुम हो!
इकरार में तुम हो कभी इनकार में तुम हो!!

विद्यु०—(क्रोध से) चुप रह कामान्ध! जिस जन्मभूमि के

जल-वायु से पल कर तेरा ये शरीर बड़ा हुआ है, उसी मातृ-भूमि को क्षणिक-सुख के लिये शत्रुओं के हाथ बेचते तुझे शर्म नहीं आई ?—क्या देख नहीं रहा—चित्तौड की स्वतन्त्रता का अपहरण ! अनेकों बच्चे अनाथ बन रहे हैं, सैकड़ों स्त्रियाँ पतिहीन होकर बिलख रही हैं ! स्वदेशभिमानियों का रक्त पानी की तरह बहा जा रहा है ! ओफ ! ये देखने के पहिले तेरा हृदय क्यों नहीं फट जाता ? आँखें क्यों नहीं मुँद जातीं ?

जुबाँ खामोश होती है असर काफ़ूर नालों में !
न ताक़त सुनने तक की ही रहेगी सुनने वालों में !!
ये बर्बादे-वतन का दास्ताँ, जब याद आयेगा !
न समझो आज ही तक बल्कि सदियों तक रुलायेगा !!

ममर०—(करुण स्वर में) अपराध हुआ ! क्षमा करो विद्युल्लते ! भूल जाओ ! भूल जाओ मेरे गुनाहों को !

विद्यु०—(तेजी से) याद कर ! याद कर, तूने कितना बड़ा पाप किया है ? एक, दो घर में नहीं, सारे देश में हाहाकार भर दिया है। बोल ? बोल ? ऐसा अनर्थ करने की तुझे किसने सलाह दी ? किसने यह रास्ता दिखाया ?

ममर०—(दृढ़ता से) किसने सलाह दी ? किसने रास्ता दिखाया ?—पूँछती हो—विद्युल्लते ! सुनो—तुम्हारे प्रेम ने, तुम्हारी हृदय-हारी सुन्दरता ने ! और उस सुन्दरता को अपनी बना लेने की लालसा ने ?

विद्यु०—(आश्चर्य से) मेरे सौंदर्य ने ? मेरे इस रूप ने ? क्या इसी रूप के लिये तूने यह अधर्म किया है ? क्या मेरी सुन्दरता ही देश की बर्बादी की वजह हुई है ?—धिक्कार !

धिक्कार है इस रूप पर, इस रूप की मनुहार पर !
लग गई जो मवास होकर देश के संहार पर !!

(करुण स्वर में) क्षमा करो माता जन्मभूमि ! मेरे अपराध को क्षमा करो ! नहीं जानती थी कि—मैं ही तेरे नाश का कारण बनूँगी ! मेरी सुन्दरता ही तेरी कलंकिनी-सौत बन जायगी। जननी जन्मभूमि ! मेरे माथे पर देश-द्रोह की कालिमा न लगने दो। मुझे बचाओ—अपनी विशाल-गोद में स्थान दो ! मैं तुम्हीं में उत्पन्न हुई तुम्हीं में सुन्दर बनी ! और अब तुम्हीं में मिलना चाहती हूँ। मुझे अपनी शरण दो ! शरण दो माता !—अपनी शरण दो !!!

[विद्युल्लता छाती में कटार मार लेती है—खून का फुहारा-सा चलता है।]

समर०—(विह्वल-स्वर में) विद्युल्लता ! विद्युल्लता !! मेरी प्यारी विद्युल्लता !!! [पर्दा फिर गिर जाता है]

प्रकाश०—(वीर स्वर में)—

ये हैं वे वीर माताएँ, अचल साहस और शौर्य का !
खुलासा कर रहा इतिहास सारे जिनकी हालत का !
चढ़ाए माथ हँस हँस कर धरम और देश पर अपने—
किया है जिनने सिर ऊँचा हमेशा समस्त-भारत का !

उठो ! उठो !! नौजवानो ! वीर-माताओं की चाँदनी-सी उज्ज्वल, धूप-सी तेजस्वी कीर्ति को अपनी कायरता बुजदिली और उदासीनता की कालिमा से मलिन न करो !

है काम किसका तुम्हें सोचो लगाओ जोर-जवानी में !
बढ़ो आगे निडर होकर लगाओ आग पानी में !!

जो मरते है, अमर होते हैं वह नेकी के ज़रिए से—
जो कर गुज़रोगे अपना है, वही इस नौजवानी में!
[जगली-सिपाही के साथ सुनीता का मिलाई के लिए आना]

प्रकाश०—(चौंककर) कोन ?—सुनीता !

सुनीता—(करुण-स्वर में) हाँ, हतभागिनी, अनाथिनी आपकी सुनीता !

प्रकाश०—(गभीरता से) मुझ बन्दी के पास क्यों आई हो—सुनीता क्या नर्क में स्वर्ग की तसवीर खींचना है ? जहर को अमृत बनाना है ? या मेरे देश प्रेम को अपने प्रेम के जाल मे जकडना चाहती हो ?—(मीठे स्वर में) बोलो ? बोलो—रानी ! क्या चाहती हो ? चुप हो ? . रोती हो सुनीता ? .. न रोओ, न रोओ, मैं किसी का रोना नहीं देख सकता ! मेरी आत्मा में तूफ़ान आ रहा है—न रोओ सुनीता ! मेरा कहा मानो, न रोओ ! बताओ तुम क्या चाहती हो—सुनीता ?

सुनीता—(आँसू पोंछते हुए) मुझसे न पूछो प्रकाश ! तुम्हारे सवाल का जवाब तुम्हारा हृदय देगा। उसीसे पूछो कि 'मैं क्या चाहती हूँ !' मेरी क्या इच्छा है ?

प्रकाश०—(अपने आप से) हृदय ? हृदय ! तुम्ही बताओ कि सुनीता क्या चाहती है ? (क्षण भर बाद सुनीता से) समझा ! समझा—सुनीता कि तुम क्या चाहती हो ! तुम चाहती हो कि मैं राज-सत्ता के सामने घुटने टेक कर माफ़ी माँग लूँ ! देश के रास्ते से हट जाने का वचन देकर जेल से बाहर आऊँ और...? और

की चालों को नहीं समझा है। दमन की नीति को नहीं समझा है, और

जगली—(स्वाभाविक ढंग से) बाक़ायदा है—मैंने समझा है, संयुक्त अक्षर-रहित हिन्दी की पहिली पुस्तक की तरह मैंने समझा है कि वज़ीर की कूटनीति प्रजा के गरीब दिलों को किस क़दर कुचल रही है। आग सुलगती है, धुआँ उठता है, लेकिन किसी को जलाता नहीं।

सुनीता—(तेज़ी से) फिर तुम वज़ीर का साथ क्यों देते हो पहिरे-दार साहब ?

जगली—(दुखित मन से) मैं नहीं देता। मेरी नौकरी देती है, मेरा पेट देता है, रोटी देती है।

नौकरी की झोंपडी में, जिस्म ये आफ़त-ज़दा।
बेक़ायदा भी है यहाँ पर हर तरह बा-क़ायदा॥

प्रकाश—(ख़ुशी के स्वर में) ठीक कह रहे हो—प्रहरी। रोटी का सवाल ही देश हित से पीछे हटा देता है। कर्तव्य पथ से दूर कर, पेट के बनाए रास्ते पर ढकेलने लगता है !

जगली—(रोष के साथ) गुलामी। गुलामी। शरीर पर ही नहीं, आत्मा तक पर गुलामी छा रही है, कुछ नहीं कर सकता। अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता ?—क्यों नहीं कर सकता ? क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ—देशवासी नहीं हूँ ? फिर ? नहीं, अब पेट के लिए देश-द्रोही नहीं बनूँगा। तुम देश के लिए मुसीबतें झेल रहे हो, और मैं पेट के लिए पाप कर रहा हूँ। अधर्म कर रहा हूँ ! (पास जाकर) प्रकाश। तुम देश का कल्याण करो, मैं चुपके से तुम्हें निकाले देता हूँ ! आओ जल्दी करो !

प्रकाश—(दृढ स्वर में) नहीं। हरगिज़ नहीं। मैं फ़रारी नहीं

बनता ! चोरों की तरह मैं नहीं भागता ! अपने एक देश-भाई के गले में फन्दा डाल कर स्वयं आज़ाद बनना नहीं चाहता ! ये भावना न जगाओ पहरेदार !

बंगाली—(तीव्र स्वर में) मेरी चिन्ता न कीजिए ! मैं फाँसी पर चढ़ जाऊँगा मर जाऊँगा ! पर मुझे सन्तोष रहेगा कि मैंने अपने पापों का वास्तविक परिहार तो कर लिया ! आपकी जान मेरी जान से कीमती है मुझे बाकायदा मर जाने दीजिए !

सुनीता—प्रकाश ! यह दूसरा उपाय है ! इसे ही स्वीकार करो ! नहीं यह मौका भी चला जायेगा—तो मुश्किल होगी ?

प्रकाश—(चमक कर) मुश्किल ?

दिल है पाक और दिल में है सर्वशक्ति शाली भगवान !
उसे नहीं परवाह किसी की मुश्किल है उसको आसान !!
सुनीता ! मुझे रसातल की ओर न ले जाओ !
जाओ अब भाग्य निर्णय पर छोड़ दो मुझे !

सुनीता—(करुण स्वर में) प्रकाश ! हृदय को न ठुकराओ ! तुम्हीं बताओ कि तुम्हारी रिहाई के लिए मैं क्या करूँ ? किससे कहूँ ?

प्रकाश—(गंभीर होकर) मेरा कोई नहीं है तुम किससे कहोगी—सुनीता !

सुनीता—(चकित होकर) तुम्हारा कोई नहीं है ! तुम देश भर के बन रहे हो, और तुम्हारा अपना कोई नहीं—कैसी बात है ? बोलो बोलो किसी को तो बताओ, कोई तो होगा !

प्रकाश—(गंभीर होकर) हाँ ! गुरुदेव हैं ! उनके पास जाओ, वे अगर कुछ कर सकेंगे तो हो सकेगा ! पर सुनीता मेरे

लिये इतना कष्ट क्यों उठाती हो ? मुझे देश की बलि-
वेदी पर अपनी रक्त की धारें बहा देने दो !

जगाने दो उजेला अब मुझे निज आत्म-शक्ति का !
दिखाने दो मुझे संसार को बल देश भक्ति का !!

जगली—(हर्षित होकर) धन्य हो ! वीर सन्तान धन्य हो !!

सुनीता—लेकिन कहाँ मिलेंगे—गुरुदेव ! कोई ठिकाना ?

प्रकाश—साधुओं का ठिकाना नहीं होता—सुनीता !

सुनीता—कोई चिन्ता नहीं !—

वियोगिन बन के निकलूँगी मुक़द्दर आजमाऊँगी !
हवा की भाँति भू-मण्डल का मैं चक्कर लगाऊँगी !!
कहीं भी होंगे वह होंगे मगर आकाश के नीचे—
जमीं के कोने-कोने से उन्हें मैं ढूँढ लाऊँगी !!

(जाती है—जगली के साथ)

—पटाक्षेप—

दूसरा दृश्य

[स्थान दर्बार, महाराज अजितसिंह सिंहासन पर विराजे हैं, वजीर रणधीरसिंह एक कागज हाथ में लिए कुर्सी छोड़ कर खड़ा होता है]

अजित—(विह्वल-स्वर में) मानो, मानो, कहा मानो—वजीर साहब ! उसे फाँसी न दिलवाओ ! उसका कोई अप-राध नहीं है ! वह बे क़ुसूर है ! मासूम है, रहम करो उस पर !

वजीर—(तेज आवाज में) लेकिन दुश्मन है ! सल्तनत के लिए खतरा है ! और प्रजा की शान्ति के लिए विद्रोह की आग है। उस पर रहम नहीं, ज़ुल्म करना चाहिए, सजा देनी चाहिए , मिटा देना चाहिए—उसे !

अजित०—(नर्मी से) मगर मैं उसे ऐसा नहीं देखता ! उसका मकसद देश की भलाई है, उसकी निगाह देश की पुकार है। उसकी जिन्दगी देश की जिन्दादिली का सबूत है ! मेरे दिल में उसके लिए रहम है ! मैं उसे मुहब्बत की नजरों से देखता हूँ !

वजीर—(हँसकर) यह तुम्हारा भोलापन है, भूल है महाराज ! शत्रु को प्रेम करते हो तलवार की धार का विश्वास करते हो और जहर को मीठा समझकर अपनाते हो ! जहाँपनाह !—मेरा फर्ज है कि मुझ को सुझाकर आपको राज्य-सत्ता की भलाई का रास्ता दिखाऊँ ! फिर म जीजिए—(कागज बढ़ाता है) दस्तखत कीजिए ! अगर आप ऐसा नहीं करते तो—उसका मतलब राज्य नष्ट करना होगा आपकी दस्तन्दाजी देश में बगावत भड़काकर ही छोड़ेगी और उसके जिम्मेदार आप होंगे !

अजित०—(उच्च स्वर में) न डराओ, न डराओ ! देश की गीदड़ ताक तस्वीर खींचकर मुझे न डराओ ! मुझे बिल्कुल पागल न समझो वजीर साहब ! याद रखो—मैं शुरू से ही ऐसा नहीं था ! तुम्हारी ही तरह मैं भी होशियार अक्लमन्द और दिमागदार था। लेकिन मेरे राजकुमार जयसेन ने मुझे पागल बना दिया ! जिस दिन से वह मेरी आँखों से ओझल हुआ मैं पागल बन गया ! सारा राज-काज मैंने तुम्हें सौंप दिया ! और तुमने मेरे कमजोर दिमाग को शराब की आदत में फँसाकर और भी नाकाबिल बना दिया ! और अब मेरे पागलपन में एक बेकसूर की हत्या करना चाहते हो ? यह न हो सकेगी !

सुनने दो मुझको ज़रा, शुद्ध-हृदय संलाप !
अधिक न अब सिर पर रखो, अपराधों का पाप !!

वज़ीर—आश्चर्य ! आप उपकार को अपकार मान रहे हैं ! यह सरासर अहसान फ़रामोशी है ! याद कीजिए—महाराज ! जब पुत्र-वियोग में आप दिल और दिमाग दोनों से पागल होने जा रहे थे—तब इस वफ़ादार ख़ाकसार ने आपको—सदमे के ज़बर्दस्त धक्के से बचाने के लिए—बतौर दवा के शराब पिलाना शुरू किया था ! मेरा ख़याल है, शराब ने अब तक आपको पागल होने से बचाया है ! और ऐसी हालत में, जब कि आप रंजीदा हों शराब पीना आपके लिए मुनासिब बात है । (कागज़ रखकर, जाम हाथ में लेकर) लीजिए, दिल की सजीदगी को बर्बाद कीजिए ।

नियामत है ये दुनिया की फली फूली दुआ है ये !
हज़ारों रंजोगम को दूर करने की दवा है ये !!

अजि०—(जाम की ओर देखते हुए) शराब ?···· शराब ?
न समझो इसको तुम हाला, असल में ये हलाहल है !
वो तनका घात करता है, ये करती मन को पागल है !!
जो पीता है इसे वह फ़र्ज़ अपना भूल जाता है—
मज़ा हैवानियत के कारनामों में दिखाता है !!
वज़ीर साहब ! रहने दो इस दवा के प्याले को ! मेरा मर्ज़ बगैर दवा के भी आराम हो सकता है ! मुझे इन्सान बनने दो ! न पिलाओ, न पिलाओ इस मादकता के मीठे ज़हर को, ये मेरा सर्वनाश कर देगा ! मुझे तबाह कर डालेगा !

वज़ीर—(मीठे स्वर में) तबाह कर डालेगा ? नहीं, आपकी

रंगीन तबियत को हरा-भरा बनायगा। कहा मानिए, पीजिए—आपकी तन्दुरुस्ती इसी पर मुनहसर है, इसे न छोड़िए! नहीं, आपका होने वाला अनिष्ट मुझसे न देखा जायगा। मैं आपको बुरी दशा में नहीं देख सकता—जहाँपनाह! लीजिए पीजिए, ये कड़ुवा-घूँट आपके हृदय में मिश्री घोल देगा! इसे न ठुकराइये।

(जाम देता है)

अजित—(जाम लेते हुए) तुम्हारी यही इच्छा है—तो लाओ! मैं तुम्हारी ही राय पर चलूँगा। (ओठों पर लगाते हुए) उतर जा उतर जा—आ कड़ुवे-घूँट! मेरे मर्ज की दवा! मेरे गले के नीचे उतर जा! मगर मेरे हृदय में न उतरना! मुझे बेहोश न करना! (पीता है)

बशीर—(स्वगत) उतर पड़ी! उतर पड़ी! मरे हुए को सुलाने वाली मरे मुरादों की दुनिया बसाने वाली—रसधारा कर्तव्य और बुद्धि की समरभूमि में उतर पड़ी!

अब कीमती ताकत है वो कर लगी सामना!
जो आएगी मुकाबिले हो जायगी फना!!

अजित—(पीकर) ओफ!

आँखों में बजने लगी एक नई झंकार!
बदल उठी मेरी नजर या बदला संसार!!

रगों में खून दौड़ने लगा! आँखों में सुर्खी के डोरे चमकने लगे! हृदय में एक नया संघर्ष, नया तूफ़ान सा हिलोरें लेने लगा! यह क्या है, बशीर साहब! क्या मेरा मर्ज सेहत हो रहा है या मेरी विचार-शक्ति का खात्मा! बताओ तो—यह क्या हो रहा है!

बशीर—(अदब से झुककर) घबराइए नहीं—जहाँपनाह! आप झंझटों की दुनिया को छोड़ते हुए, ऐशो-आराम की

दुनिया में तशरीफ ले जा रहे हैं। लीजिए थोड़ी और पीजिए—ताकि सारे रंजोगम आपका पीछा छोड़ दें।

अजित०—(भोलेपन के साथ) अच्छा यह बात है, तो लाओ एक जाम और।

वजीर—(जाम देते हुए) लीजिए।—

ये वह शै है निराली और अपनी जिसकी हस्ती है।
ये ताक़त है, जवाँमर्दी है, हिम्मत तन्दुरुस्ती है॥
न मज़हब की गुलामी है, न पाबन्दी का जजीरें—
ये उस बस्ती की रानी है, जहाँ हर चीज सस्ती है॥

अजित०—(पीते हुए) आओ रानी। मैं तुम्हारा सत्कार करूँगा, हृदय के सिंहासन पर बिठलाऊँगा। आओ…।

वजीर—(और जाम देता है) लीजिए। जहाँपनाह! राज्य की बागडोर आपने मेरे हाथ में दी है, मेरा फर्ज है कि उसे मैं ठीक तरह से चलाऊँ। उसमें दूसरे की दस्तन्दाजी खतरा बन सकती है। इसलिए मुनासिब है कि आप (कागज हाथ में लेता है) इस पर दस्तख़त करदें!

अजित०—(भोलेपन से) क्या है बेगुनाह प्रकाश का फाँसी-पत्र उसे न मारो वजीर! उसने कुछ नहीं बिगाड़ा! वह निर्दोष है।

वजीर—(कड़ी आवाज में) वह निर्दोष है? जिसने देश में बगावत की आग भड़कादी है, भोले-भालों की हिम्मत बढ़ा कर राज्य का दुश्मन बनाया है, और जो स्वयं सरे दर्बार में सल्तनत की तौहीन करने से बाज नहीं आया—वह निर्दोष है? जहाँपनाह! राज-काज में नहीं समझते, तब उस बीच में न पड़िए। मैं कह रहा हूँ—

दस्तखत कीजिए। इसी में भलाई है, इसी में कल्याण है।

अजित—(भोलेपन से) एक बेकसूर की हत्या करने में भलाई है—अपना कल्याण है?

वज़ीर—(गंभीर स्वर में) हाँ! लेकिन यह हत्या नहीं है अनर्थों की जड़ को कुरेद कर फेंकना है, आगामी आग को बर्बाद करना है। आप भूलते हैं—जो इसे हत्या कहते हैं महाराज!

अजित—(आक्षेप से) मैं भूलता हूँ?—

वज़ीर—(दृढ़स्वर में) हाँ! और आपकी भूल सुलझाना ही मेरा काम है! मेरे बतलाए हुए रास्ते से हट कर भूलों के समुन्दर की ओर न बढ़िए! लीजिए दस्तखत कीजिए। (कलम हाथ में देता है, कागज सामने रखता है।)

अजित—(आक्षेप के साथ) वज़ीर! दस्तखत नहीं [illegible] रहे हो करालो—तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही! (महाराज दस्तखत करते हैं वज़ीर 'हुक्मनामा' जेब में रख कर, जाम भर कर देता है।)

वज़ीर—(खुश होते हुए) जुग जुग जीजिए—इन ठण्डे बूँदों से दिल की तपन को बुझा लीजिए महाराज! (महाराज पीते हैं)

—पटाक्षेप—

तीसरा-दृश्य

[स्थान—वध स्थल। प्रकाश फाँसी के तख्ते पर खड़ा हुआ है, हाथ पर रस्सी से बँधे हैं। सिर पर फाँसी का टोपा है—गले में फन्दा, (नोट—फन्दा दिखलाने के लिए, पीछे गर्दन के कमीज के छिपने में डोरी ले जानी चाहिए, आगे भी डोरी दीखे) समीप ही जल्लाद खड़ा है। एक ओर महाराज और वजीर खड़े हैं। पीछे जंगली पहरे दार हाथ में पिस्तौल लिए]

वजीर—अब भी समय है, एक बार फिर सोचो!

प्रकाश—(गंभीर स्वर में) सोच लिया!

वजीर—देखो, नाहक जान गँवाने से कोई नतीजा हासिल न होगा! एक मजबूत ताक़त के आगे इस तरह की दिलेरी दिखाना, महज़ बेवकूफ़ी है!

प्रकाश—(उपेक्षा से) बेवकूफ़ी? जिसे आप बेवकूफ़ी कहते हैं, मैं उसे अक्लमन्दी समझता हूँ। मिट्टी का कमजोर घड़ा ताक़तवर पानी को क़ैद कर लेता है। नाचीज़ तृणों से बनी हुई रस्सी, कठोर पत्थर को घिस डालती है। हाथ में न पकड़ी जाने वाली ज्वाला, फौलाद को पानी बना देती है! उसकी मजबूत ताक़त ज्वाला के जलते हुए हृदय की साँसों के सामने गल जाती है।

वजीर—(तमककर) गल जाती है?—लेकिन मैं उसे गला देने का मौक़ा न मिलने के पहिले ही नष्ट कर दूँगा। याद रखो मैं इतना बेवकूफ नहीं हूँ—मैं आग से खेलता हूँ लेकिन आग मुझे अपना खिलौना नहीं बना सकती।

प्रकाश—(सरलता से) घमण्डी न बनो—वजीर साहब! प्रभात का संसार की आँखें बन्द कर देने वाला अहंकारी

सूरज—सन्ध्या को अस्ताचल की गोद में मुँह छिपाने के लिए व्यग्र नज़र आता है। कमान की ताक़त पर अपने को ऊँचा पहुँचाने वाला—अमरपक्षी बाण शक्ति के अन्त ज़मीन पर गिरता दिखाई देता है। तुम्हारा अहंकार देश के हाहाकार के मुक़ाबिले में खड़ा रहेगा यह असम्भव है।

कबीर—असम्भव है। समझ गया कि तुम्हारा जीता-जागता नज़र आना अब असम्भव है। मौत की विनाशकारी घड़ी ने तुम्हारे जीवन-सोम को ढक लिया है! देखो एक बार फिर सोचो आख़िरी मौक़ा दे रहा हूँ—अगर अपने हठ को छोड़दो देश की शान्ति को क़ायम रखने में मदद दो तो तुम्हारी जाँ-बख़्शी हो सकती है। तुम सही सलामत वापिस लौट सकते हो। बोलो ...!—

अम्बरा—(कड़ककर) चुप रहो! मेरे देश-प्रेम को—मेरी बलि-दानी-भावना को—मलामतों की आग में पिघलाने की चेष्टा न करो।—

वह फूल नहीं है कण्टक है जिसमें सौरभ का सार नहीं!
मत कहो उसे बाजा हरगिज़ जिसके भीतर झनकार नहीं!!
वह जीवित भी है मरा हुआ करता जो पर—उपकार नहीं!
वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं!!

कबीर—(ज़ोर से) ऐ मूर्ख ऐ मूढ़! क्या हठी बिफराहो! ये देश प्रेम की रट तुझे मौत के घाट उतार कर रहेगी!

अम्बरा—(जोश के साथ) परवाह नहीं!—

परवाह नहीं है मरने की गर जीता मेरा वतन रहे!
शान्ति उपासक बना रहूँ सिर पर ईरानी दमन रहे!!

मैं रहूँ, न रहूँ मेरा क्या है यह तन स्वदेश की मिट्टी है—
पर्वाह है तो बस इतनी है—सारे स्वदेश में अमन रहे !!

वज़ीर—ख़ामोश ! अमन का गीत गाता है, और देश में हाहाकार को नींव जमाता हुआ मौत के रास्ते पर लेटता है—धोखेबाज कहीं का !

प्रकाश—(तमक कर) मैं धोखेबाज ?

धोखा तू दे रहा है परवरदिगार को !
ठुकराके दर्दमन्द प्रजा की पुकार को !!
छोटों के बल से आज तू दुनिया में बड़ा है !
ये राज्य प्रजा ही के सहारे पै खड़ा है !!
तू ज़ुल्मो सितम से हमें बरबाद करेगा !
यह ज़ुल्मो सितम ही हमें आज़ाद करेगा !!

अजित—(स्वगत) सच कह रहे हो—प्रजा पुत्र ! ओफ़ ! आज यह राजा कहलाने वाला—दूसरे की इच्छाओं पर चलने वाला—बेवकूफ कुछ नहीं कर सकता ! काश ! अगर आज जयसेन—मेरा प्यारा बेटा जयसेन होता ! तो ?—

वतन अमनोअमन होता, समय होता इबादत का !
न मौक़ा ही जलालत का न दिन आता क़यामत का !!

वज़ीर—(कड़े स्वर में) देखता हूँ आज़ादी के दीवाने ! प्रजा के सहारे पर राजा है या राजा की परवरिश पर प्रजा है ? अहंकारी ! देखता नहीं—राजा की एक पतली-सी डोरी पर तेरी जान अटकी हुई है।

गौर कर अपने ख़याले-ख़ाम पर !
और ना-समझी के इस अन्जाम पर !!
जान से बढ़कर जहाँ में कुछ नहीं—
जान क्यों देता वतन के नाम पर !!

प्रकाश—तू नहीं समझ सकता कि मैं वतन पर जान क्यों देता हूँ ! इसलिए कि—

जान से बढ़कर वतन है या वतन ही जान है !
जब वतन पर आ पड़ी तो जान की क्या शान है !!
जो वतन की आन पर देता न अपनी जान को—
वह अगर इन्सान भी है तो निरा हैवान है !!

बशीर—(शान्ति से) समझ गया ! समझ गया कि मौत के सिपहसालारों ने दिमाग़ पर क़ब्ज़ा पाली है। अब तुझे कोई बचा नहीं सकता !

मौत के बादल हैं अब सिर पर सवार !
मरने वाले जल्द होजा होशियार !!

प्रकाश—(ज़ोर से) होशियार हूँ !—

छिपाके नाम तू अपना सितमगार बदकमन्दों में !
बहा या दिन को तू बनके यहाँ दुनिया के बन्दों में !!
बहा दे खून तू मेरा मिटा दे जिस्म की हस्ती—
न आयगी ये आज़ादी मगर फाँसी के फन्दों में !!

बशीर—(ज़ोर से हँसकर)—

'बात हिम्मत की मेरे सामने आई न गई !
रस्सी जलकर के हुई खाक पर ऐंठन न गई !!'

प्रकाश—तू समझता जो कुछ समझ सके, आख़िर परमेश्वर समझेगा !
अन्याय का घट पूरा होगा तब वह फटकर बरसा जायगा !!

बशीर—(ज़ोर से हँसने के बाद) कौन ईश्वर ? कौन परमेश्वर ? तेरा ईश्वर मैं हूँ—तेरी आयु मेरी (कलाई की घड़ी में देखते हुए) इस घड़ी में बन्द है !

बागती—(स्वगत)—रखते हैं बेसबब ही ये अपनी टेक है !
मरता नहीं किसी से जो दिल का नेक है !!

तुम इनको अपना समझो, उन्हें गैर समझलो—
पावन्द सब उसी के प्रभू सबका एक है !!

वजीर—(जोर से) लगादो फाँसी ! एक—दो—ती .. !

(जल्लाद तैयार होता है, उसी वक्त एक ओर से सुधा वेश्या कुछ कागज़ लिये आती है ! दूसरी ओर से सुनीता के साथ गुरुदेव और प्रकाश के सैनिक-साथी आते हैं।)

गुरुदेव और सुधा—(एक साथ ज़ोर से) ठहरो !

(जल्लाद दूर हटकर खड़ा होता है)

सुधा—(वजीर की ओर उँगली दिखाते हुए) सल्तनत के सबसे बड़े दुश्मन की नापाक मर्जी पर एक बे-गुनाह का .खून न बहाइये—जहाँपनाह !

गुरुदेव—(कड़ककर) धूर्त, मक्कार दगाबाज वजीर की झूँठी और मीठी चालों में फँसकर अपने प्यारे पुत्र की हत्या न कराइये—महाराज !

अजित—(ताज्जुब से) हँय ! यह क्या ? इसका सुबूत ?

सुधा—सुबूत मैं दूगी ! असल अपराधी को फाँसी देने के लिये तैयार होइये और इस बे- क़ुसूर नौजवान को नीचे उतारिये।

अजित—(जगली की ओर) प्रकाश को तख्ते से उतार दो !

जंगली—(अदब से) बाक़ायदा—जो हुक्म !

(जगली प्रकाश की फाँसी खोलता है। उसी वक्त—)

वजीर—(कागज हाथ में लेकर) क्या करता है ? यह देख, महाराज का हुक्मनामा !

जंगली—बाक़ायदा है, सरकार ! मगर महाराज के मुँह से निकले

हुए हुक्म के आगे—कायदों हुक्म—मुझे अपने पद के लिए बेकार है !

वज़ीर—(क्रोध में पिस्तौल लेते हुए) अच्छा ! मेरी मर्ज़ी के खिलाफ़ कोई ज़िन्दा नहीं रह सकता ! फाँसी की मौत से बचा सकते हो लेकिन पिस्तौल की गोली नहीं रोक सकते !

(प्रकाश सोच जाता है। उसी वक्त वज़ीर गोली मारता है। गोली लगने के पहिले ही फटेहाल-बेकार युवक प्रकाश के सामने आ खड़ा होता है—गोली उसकी बाँह में लगती है—खून से लथपथ वह गिर जाता है)

अजित—(चिल्लाकर) गिरफ्तार करो ! खूनी को कैद करो !

(प्रकाश के साथी सैनिक और जंगली मिलकर वज़ीर को बाँध लेते हैं पिस्तौल छीन ली जाती है)

प्रकाश—(बेकार युवक को उठाते हुए) कौन ? बेकार-युवक ! भाई तुमने मेरी जान बचाई—अपनी जान की कुर्बानी देकर !

बेकार—(नम्रता से) मैंने कुछ नहीं किया !

जो कुछ किया है सिर्फ यह कहने का नाम है !
भाई की मदद आना भाई का काम है !!

प्रकाश—(फटी कमीज़ को छूते हुए) क्या वह पाँच हज़ार रुपए भी तुम्हारी हालत में तब्दीली नहीं ला सके ?

बेकार—(गम्भीरता से) यह बात नहीं ! उन रुपयों से मैंने देश को सुधार के लिये एक 'बेकार-आश्रम' खोल दिया है, जिससे हज़ारों की आत्मा शान्त हो सके !

प्रकाश—(हर्षित होकर) धन्य हो मेरे देशवासी ! तुम गरीबी में भी भारतीयता को नहीं भूले—तुम धन्य हो ! (अपने एक सैनिक से) ले जाओ, इन्हें आरोग्य करो !

(एक सैनिक के साथ बेकार-युवक आता है)

सुधा—(एक फोटो दिखाती है) पहचानिये, महाराज यह कौन है ?

अजित—(देखते हुए हैरत से) निरंजन ! मेरे राज्य का दर्बान ! जो बेचारा इस खूनी वजीर की गोली का निशाना बना, जिसे मरे एक अर्सा गुजर गया !

सुधा—लेकिन आप यह नहीं जानते—उसे वजीर ने क्यों मारा ? (कागज हाथ में देती है) यह पढ़िये !

अजित—(कागज पढ़ता है) 'मेरे दोस्त निरंजन ! मैं तहरीर किये देता हूँ कि बीस हजार रुपये तुम्हें उस वक्त और दूंगा जब तुम युवराज जयसेन को किसी भी तरीक़े से खत्म कर दोगे ! और मुझे राज्य की कामयाबी में मदद देते रहोगे। तुम्हारा—वजीर रणधीरसिंह !' (पढ़ने के बाद वजीर की ओर) हूँय ! राजकुमार को इसी दुष्ट ने राज्य हड़पने के लिये मरवा डाला था ?

सुधा—(दृढ़ता से) हाँ ! और पाप को छिपाये रखने के लिये—इस बेईमान ने भोले निरंजन को भी मार डाला ! इसके बाद राज्य के सच्चे हमदर्द जागीरदार को भी मार डाला। इसी वजह से कि उन्हें इस पाप का पता चल गया था ! वे इसके रास्ते को ठोकर बन गये थे !

सुनीता—(दुःखभरे स्वर में) आह ! मेरे पिताजी को इसीलिए मारा था ? नराधम, नीच ! एक पाप छिपाने के लिए कितने पाप किए तूने ?

वज़ीर—(सुधा से) ये पत्र तेरे पास किस तरह आया चाण्डालिन ?

सुधा—(तेजी से) जिस तरह तूने मुझे महारानी बनाने का प्रलोभन दिया। उसी तरह मैंने तुझे मुट्ठी में रखने के लिये—निरंजन को उल्लू बनाकर छीन लिया !

अजित—(गुरुदेव से) तो जयसेन की हत्या से और प्रकाश से क्या सम्बन्ध ? इस पहेली का क्या मतलब ?

गुरुदेव—मतलब मैं समझाता हूँ—महाराज ! मेरा साधु आश्रम गंगा के पवित्र किनारे पर बसा हुआ है ! एक दिन मैं अखण्ड-समाधि में लीन होकर बैठा था ! सहसा परोपकार की सद्भावना ने मेरी समाधि को भंग किया। मैंने देखा कि एक बालक-शरीर बहता चला आ रहा है ! उसे निकाला। उपचार से चैतन्य किया। फिर आश्रम की झोंपड़ी में लाया। उस मनोहर-बालक की दिव्य-ज्योति से अँधेरी झोंपड़ी प्रकाशमान हो उठी—तो मैंने बालक का नाम 'प्रकाश' रक्खा। आँखों की तरह पोषण कर बड़ा किया।

अजित—(गुरुदेव से) हाँ ! कहो कहो—प्रकाश ही राजकुमार जयसेन है इसका सबूत ?

गुरुदेव—इसका सबूत स्वयं प्रकाश है ! प्रकाश इधर आओ— (प्रकाश समीप आता है, गुरुदेव दाहिने हाथ के कपड़े हटाकर भुजा पर बँधे तावीज को खोलकर दिखाते हैं) देखिए शरीर पर राज चिह्न और स्वर्ण-तावीज !

अजित—(हर्षित होकर) ठीक है ! ठीक है !! यह मेरा ही अलंकार है ! स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है 'राजकुमार जयसेन !' (विह्वल स्वर में) मेरा राजकुमार ! मेरा प्यारा राजकुमार ! मेरा बेटा …!

वज़ीर—(घबड़ाकर) हैं ! जयसेन जिन्दा है ?

(सुनीता मुस्कराती है सब प्रसन्न हैं ! महाराज प्रकाश को छाती से लगाते हैं)

प्रकाश—पिताजी ! पिताजी !!—(चरणों में झुकता है)

— पटाक्षेप —

चौथा-दृश्य

[स्थान—दर्बार ! महाराज अजितसिंह सिंहासन पर हैं। समीप ही एक ओर प्रकाश है, दूसरी ओर सुनीता। उच्चासन पर गुरुदेव बैठे हैं। प्रकाश के सैनिक-साथी खड़े हुए हैं, वजीर रणधीरसिंह जंजीरों में बँधे खड़े हैं। जगली पिस्तौल लिए उनके पहरे पर तैनात है।]

जगली—(खुशी से)—

वतन में छाया अमन, हर ओर से आती सदा !
टूटकर बेक़ायदा अब बन गया बाक़ायदा !!

गुरुदेव—अहा ! कैसा धन्य दिन है ! देश की आवाज आज आनन्द ध्वनि बन रही है ! घर-घर में सन्तोष की साँस ली जा रही है। आज विजय-दिन है—अत्याचारों की दानवी लीला समाप्त हो चुकी है !

तन चुकी है चाँदनी अब देश के आकाश पर !
हो रहा अधिकार क्रमश कीर्ति के इतिहास पर !!

अजित०—(उठकर) आज इस पवित्र दिन के सुनहरे प्रकाश में मी अपने कर्तव्य से उऋण होकर प्रभु-भजन का आनन्द-भोग करना चाहता हूँ—गुरुदेव !

गुरु०—(खड़े होकर) श्रेष्ठ विचार है राजन !

[महाराज थाल में रखे हुए राज-मुकुट, तथा मंगल द्रव्यों को उठाकर प्रकाश के राजतिलक करना चाहते हैं, प्रकाश उठता है—सुनीता भी खड़ी हो जाती है]

प्रकाश—(हाथ उठाकर) ठहरिए पिता जी !

अजित०—(सब एकटक देखने लगते हैं) क्यों ?

प्रकाश—(गम्भीर स्वर में) मैंने प्रतिज्ञा की है, जब तक चाम्पूर जागीरदार के खूनी से बदला न लूँगा, तब तक माथे पर त्रिपुण्ड न लगाऊँगा। इसलिए—होनहार नरेश की हैसियत से मैं वज़ीर रणधीरसिंह को सज़ा देता हूँ कि उस लोहे के कठघरे में बन्द कर शहर के बाजारों के भरे-पूरे चौराहे पर रख दिया जाए! जिससे लोग सभी और बड़ी का सबक सीख सकें।

जान लें पापी को बड़ और पाप के अंजाम को!
दूर से ही त्याग दें जिससे बचो के काम को!!

वज़ीर—(गिड़गिड़ाकर) रहम करो! रहम करो! इस जलालत की मौत न मारो! मुझे गोली मार दो, मुझे फाँसी दे दो! मुझे क़त्ल कर दो—पर प्रजा के आगे ज़लील न करो।

प्रकाश—चुप रहो मैं तुम्हारे नापाक खून से अपने हाथ नहीं रंग सकता!

वज़ीर—(कड़ककर) नहीं रंग सकते?—तो मैं भी जलालत की मौत नहीं मरूँगा!

(वज़ीर झपट कर जंगली के हाथ से पिस्तौल छीन कर अपने कलेजे में गोली मार लेता है। खून का फुहारा-सा चलता है—मर जाता है। सब देखते हैं)

सब—(एक साथ) मर गया! इसी के पापों ने इसे मार डाला।

जंगली— कश्मीर के इन्साफ़ में कुछ देर नहीं है!
है देर तो बेशक पर अन्धेर नहीं है!!

मजिस०—(जनता से) आने दो, मेरा शासन पाक हुआ। प्रकाश तुम अपनी प्रजा के स्वामी बनो। मुझे अपने हक़ से अपना होम दो।

[महाराज राजतिलक कर, मुकुट सिर पर रखते हैं, सब लोग चिल्लाते हैं ।

सब—महाराज की जय हो ! [महाराज सुनीता को और प्रकाश को सिहासन पर बैठाते हुए पुष्प वर्षा करते हैं ।]

प्रकाश—[गुरुदेव और महाराज को सिर झुकाता है, फिर जगली से—सच्चे राज्य भक्त ! मैं तुम्हे वजीर का पद देता हूँ !] (तलवार भेंट करता है, जगली सिर झुकाकर लेता है)

गुरुदेव—(हर्पित होकर) ओ प्रकृति की गोद मे सोने वाले जीव-धारियो ! ख़ुशी से नाच उठो ! आज हिसा की छाती के ऊपर अहिंसा नृत्य कर रही है । चारों ओर अहिंसा की विजय-दुन्दुभी कानों को अमृतमयी बना रही है ।

हृदय अनुभूतियों की विश्व-नभ पर क्रान्ति-सी छाई !
दुरद हिंसा की ज्वाला पर अहिंसा ने विजय पाई ॥
मिलो भाई मे भाई और 'भगवत्' प्रेम सचय हो !
सदा ही विश्व-मण्डल में अहिंसा-धर्म की जय हो ॥

सब—अहिंसा धर्म की जय हो !

(आकाश से पुष्पो की वर्षा होती है)

अभिनायकों की सुविधा के लिए—

सीन—

वजीर श्मशान-भूमि वेश्या का घर, तपोवन सुशीला का घर, राजपथ वजीर का कमरा, जंगल जल जल-स्थल और अयोध्या, चित्तौड़।

सीनरियाँ—

चिता घोड़े, पर्दा फन्दा राम राज्य चित्तौड़-गढ़ काले-काले बादल बिजली मेह, जंगल जेल फाँसी का तख्ता और साधु आश्रम की झोंपड़ी!

ड्रेसिंग

[प्रमुख-पात्रों के लिये विशेष रूप से]

१—वजीर—ब्रिचिस बूट, बन्द कॉलर का कोट और साफा हाथ में चाबुक। कोट, पैन्ट, टाई और साफा। कभी चूड़ीदार पजामा कुर्ता।

२—प्रकाश—गेरुआ वस्त्र! नेकर खाकी कमीज और साफा। खद्दर का सफेद कुर्ता जवाहरकट-वास्कट टोपी गांधी चप्पल।

३—महाराज अजितसिंह—राजा-सी पोशाक

४—जंगली—सिपाही सादा ड्रेस, और कभी सादा लिबास!

५—गुरुदेव—सफेद चुगा, सफेद लम्बी दाढ़ी सफेद साफा और लाठी। गले में माला!

बाकी सब के यथा साध्य—

क्रांति का नया दूत

'शाला' 'बाला' की परिपाटी पर भीषण प्रहार !

आपने 'मधुशाला' 'मधुबाला' 'नवबाला' और 'वधशाला' पढ़ देखीं। अब जरा इस सामाजिक-मनोरंजन को भी पढ़ देखिए। गारण्टी है कि इसे आप पसन्द करेंगे। श्री 'भगवत' जी जैन की यह एक नवीन और मौलिक कृति है।

नाम है—

घरवाली

जिस उद्देश्य से विधाता ने इसे संसार को दिया है। उसी विनोद की दृष्टि से लेखक इसे आपके आगे पेश करता है।

❀ घरवाली ❀

नाटक है, उपन्यास है, कविता है, कहानी है, निबन्ध है। सब कुछ है। और कुछ भी नहीं है। यह वह है जिसे बगैर पढ़े आप नहीं बता सकते कि— क्या है? एक कापी मँगाने के लिए तैयार रहिये।

शीघ्र ही छपने जा रही है !

व्यवस्थापक—

भगवत-भवन एत्मादपुर, आगरा।

जिनका पढ़ना आपके लिए जरूरी है।
जो समाज की जटिल समस्याओं का
उद्घाटन करती और रूढ़िवाद के विरुद्ध
बिगुल बजाकर समाज-भक्तों और अन्य
विश्वासियों को जगाती हैं। अतः आप
पढ़ें बच्चों को दें स्त्रियों को पढ़ने से न रोकें।

श्री 'भगवत' जी जैन लिखित

क्रांतिकारी पुस्तकें

१—'समाज की आग' [नाटक]	॥)
२—'घूँघट' [हास्यपूर्ण प्रहसन]	।)
३—'आत्म-तेज' [स्वामी समन्तभद्र]	।-)
४—'झनकार' [गीत संग्रह]	)॥
५—'उपवन' [गीत संग्रह]	)।
६—'जय महावीर' [वीर विषयक कविताएँ]	)॥
७—'फल-फूल' [प्रमाणपूर्ण मनोहर आदि]	)॥
८—'रस-भरी [कहानियाँ]	[illegible]
९—'चिदानन्दम [पावन]	
१०—'संन्यासी [नाटक मयूर का भाग]	

व्यवस्थापक—श्री भगवत,
प्रतापपुर (